मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

"जब तक दिल की दुनिया नहीं बदलती, बाहर की दुनिया नहीं बदल सकती, पूरी दुनिया की बाग़डोर दिल के हाथ में है, ज़िन्दगी का सारा बिगाड़ दिल के बिगाड़ से शुरू होता है, लोग कहते हैं कि मछली सर की तरफ़ से सड़ना शुरू होती है, मैं कहता हूं इनसान दिल की तरफ़ से सड़ता है, यहां से बिगाड़ शुरू होता है और सारी ज़िन्दगी में फैल जाता है।"

APR 2016 | मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली | ₹10/-

जड़ता को तोड़ने वाले आंदोलन – स्वयं जड़ता के शिकार

इतिहास का एक अध्याय जो बार–बार दोहराया जाता रहा और जिससे सबक़ लेना आवश्यक है, यह है कि बहुत सी मूलभूत सुधार के आंदोलन, जो वास्तव में इस उद्देश्य से उठे कि जीवन पर छायी हुई वैचारिक जड़ता को तोड़ दें, इस्लाम के बहते हुए दरिया की सतह पर जम जाने वाली काई को दूर करें और समाज में प्रचलित इन रस्मों, आदतों और रिवाजों की ज़ंजीरों को तोड़ दें जिनकी न कोई दीनी वास्तविकता है और न कोई औचित्य।

जो आन्दोलन इसलिए चले थे कि इस्लामी समाज की जड़ पकड़ चुकी हुई अक़्लों को झिंझोड़ दें, उनकी गुप्त योग्यताओं को जागरूक कर दें ताकि नई नस्ल अपने ज़माने को, ज़माने की मुश्किलों को समझ सके, ज़माने के सही और उचित मांगों की पूर्ति कर सके, ज़माने का साथ दे सके और इस बात का सुबूत दे सकें कि इस्लाम हर ज़माने के सवालों के जवाब दे सकता है, मुश्किलों को हल कर सकता है, वह हर चैलेंज का मुक़ाबला करने की और हर दौर में नेतृत्व की योग्यता रखता है।

इतिहास का यह बड़ी ही सीख देने वाला अध्याय है कि ऐसे सुधार पूर्ण आंदोलन (यदि उनको क्रान्ति न कहा जाए) गुज़रते समय के साथ उसी जड़ता का शिकार हो गये जिससे मुक़ाबला करने के लिए वुजूद में आए थे और अपने आरम्भिक तरीक़े और कार्यप्रणाली की जंजीरों में जकड़े नज़र आने लगे। कार्य करने का जो तरीक़ा आंदोलन के आरम्भ में उस समय की मांगों के अनुसार निर्मित किया गया था और एक सीमित दायरे के अन्दर उस सुधारवादी आंदोलन की मांगों को पूरा करता था, उन आंदोलनों और उनसे जुड़े लोगों ने उन लकीरों को मज़बूती से थाम रखा है जो आंदोलन उन आंदोलनों के संस्थापकों ने अतीत में बड़े इख़लास से और बड़ी समझ बूझ के साथ समय की मांग को सामने रखकर और नबी करीम स०अ० की इस हदीस पर अमल करते हुए बनायी थी:

"इस काम के हर नस्ल में ऐसे न्यायिक व संयमी हामिल व वारिस होंगे जो इस दीन से अति करने को पसंद करने वाले लोगों के आन्दोलन झूठे लोगों के ग़लत दावों और जाहिलों की जाहिलियत को दूर करते रहेंगे।"

लेकिन इन जमाअतों और आंदोलनों ने उन लकीरों को इतनी मज़बूती से थाम रखा है कि जैसे कोई किसी अनिवार्य आदेश पर जमा रहे। जिसमें न किसी प्रकार के बढ़ावे की गुंजाइश है और न किसी प्रकार की लचक की संभावना, जिसके कारण इन दावतों और आंदोलनों में काम करने वालों के दिमाग़ों में जड़ता का साया हो गया है और उनमें कभी–कभी कट्टरता भी आ जाती है कि वे अपनी कार्यप्रणाली से तनिक भी हटते और इस पर इस प्रकार ज़िद करते हैं जैसे वह भी कोई शरई आदेश हो या क़ुरआन की आयत हो।

इसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि यह आंदोलन आगे बढ़ने की ताक़त खो चुका है। इसमें इतनी क्षतमा व योग्यता बाक़ी नहीं कि परिस्थितियों का नये सिरे से निरीक्षण करे, समय की मांग को पहचाने, नयी आवश्यकताओं को समझे, ज़माने की नब्ज़ पर उंगली रखे, उसकी बीमारी की सही पहचान करे और सुधार व प्रचार के तरीक़ों और जीवन की वास्तविकताओं और याचनाओं के मध्य संबंध पैदा करे।

हालांकि हक़ीक़त यह है कि इस्लाम कभी भी ज़माने से पीछे नहीं रहा। उसने सदा मानव समाज का नेतृत्व किया है और अपनी शिक्षाओं और समय की मांगों के मध्य संबंध पैदा करने की योग्यता का सुबूत दिया है। ऐसे उलमा व नेतृत्व करने वाले हर दौर में मौजूद रहे हैं जिनका वैचारिक वर्चस्व था, अत्यधिक तेज़ दिमाग़ था, वे दीनी उसूलों और शरीअत के प्रथम मसादिर से आदेशों के इज्तिहाद (शोध) की योग्यता रखते थे। उन्होंने हैरतअंगेज़ योग्यताओं और बेजोड़ क्षमता का प्रदर्शन करते हुए हर ज़माने और हर जगह के चैलेंजो का सामना किया है। ज़मानें की मांगो और उम्मत–ए–मुस्लिमा की आवश्यकताओं की पूर्ति की। उन्होंने जीवन की आवश्यकताओं से कभी आंखे बन्द नहीं की। समय की मांग और ज़माने की आवाज़ पर हमेशा कान लगाए रहे, यही कारण है कि दीन हमेशा ज़िन्दगी से भरपूर, महबूब, मक़बूल रहा, मानव समाज का नेतृत्व करता रहा और इस्लाम के दायरे के अन्दर सही राह की ओर मार्गदर्शन करता रहा।

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी रह०

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:४ अप्रैल २०१६ ई० वर्ष:६

संरक्षक: हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (अध्यक्ष – दारे अरफ़ात)

निरीक्षक
मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्री– दारे अरफ़ात

सह सम्पादक
मौ० नफ़ीस ख़ॉ नदवी

सम्पादकीय मण्डल
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाखुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

मुद्रक
मौ० हसन नदवी

अनुवादक
मोहम्मद सैफ़

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

इस अंक में:

इस्लाम के ख़िलाफ़ दुष्प्रचार..............................२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

अल्लाह का ज़िक्र ३
मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

चिंताजनक क्षण...५
अज़ीज़ुल हसन सिद्दीक़ी

मुहम्मदी जीवन स०अ० ....६
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

वह बेईमान मैं उससे ज़्यादा बेईमान ८
मौलाना मुहम्मद इलियास मुहीउद्दीन नदवी

औरत क्या कुछ कर सकती है १०
गुल अफ़शॉं आबिद

इस्लाम से दूरी क्यों?.................................१२
मौलाना अब्दुल अज़ीज़ नदवी

तातारी मुसलमान.......................................१३
समी उल्लाह मलिक

इस्लामी चरित्र व व्यवहार की विशेषताएं..........१६
मौलाना शमसुल हक़ नदवी

माता–पिता के अधिकार...............................१८
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूँनी नदवी

इस्राईली पॉलिसी.......................................२०
मुहम्मद नफ़ीस ख़ॉं नदवी

सम्पादक: बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी०.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉं, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

प्रति अंक 10रू

वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

इस्लाम के ख़िलाफ़ दुष्प्रचार

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता। यह मनुष्य के अन्दर की वह हैवानी भावना है जो कभी किसी क्रिया की प्रतिक्रिया में पैदा हो जाती है, फिर मानव अपनी मानवता को ताक़ पर रख देता है और इनसानी आबादियों में एक भेड़िये की भांति झपट पड़ता है। वह अपनी समझ खो देता है और ऐसे काम कर जाता है कि दरिन्दा भी शर्मा जाए।

इस प्रकार के दरिन्दे लोग इस समय दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में दनदनाते फिरते हैं और अफ़सोस की बात है कि ऐसे लोगों को पानी वहां से मिल रहा है जिनकी ओर सोच का जाना भी मुश्किल होता है। इस समय दुनिया की बड़ी–बड़ी ताक़तें अपने ताक़त के नशे में इतनी चूर हैं कि उन्हें इनसानियत का ज़रा भी दर्द नहीं है। वे अपनी ताक़त को बढ़ाने के लिए सबकुछ करने को तैयार हैं।

आई एस (IS) के नाम पर मानवतारहित जिन कार्यों की चर्चा मीडिया में होती है, वह वास्तव में इस्लाम और मुसलमान को बदनाम करने की और उनकी छवि को बिगाड़ने की एक लम्बी प्लानिंग है। इस्लाम की व्यवहारिक शिक्षाओं और उसके अन्दर के आकर्षण ने जिस प्रकार दुनिया को अपनी ओर आकर्षित किया है, वह इन ताक़तों के लिए अत्यधिक अप्रिय है। इन ताक़तो ने जो प्लानिंग की है उसमें यह बात भी शामिल है कि इस्लाम की बिगड़ी हुई छवि प्रस्तुत की जाए और इसके लिए इस्लाम और मुसलमान के नाम पर वे कार्य करांए जाएं जिनको देखकर और सुनकर लोगों के अन्दर मुसलमानों से नफ़रत पैदा हो और उसके परिणाम में वे इस्लाम से बदगुमान हों और उसकी ओर जो आकर्षण पैदा हो रहा है वह समाप्त हो जाए और उसके रास्ते में नफ़रत की ऐसी ऊंची दीवार खड़ी हो जाए कि उसकी कोई किरण भी दूसरी ओर पहुंचने न पाए।

दुनिया में होने वाली आंतकवादी घटनाओं का यदि निरीक्षण किया जाए तो उनमें बड़ी संख्या उन घटनाओं की है जो दूसरों की ओर से होती हैं और यदि सौ साल की ईसाई दुनिया का इतिहास पलट कर देखा जाए तो आतंकी घटनाओं व अत्याचार का ऐसा सिलसिला नज़र आएगा कि अब होने वाली घटनाएं उसके आगे शर्मा जाएं। स्पेन के पहले राजा फ्रेडंड ने पांच लाख मुसलमानों को ज़िन्दा जला दिया। सोवियत संघ में स्टालिन ने पांच करोड़ मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार की न जाने कितनी सुर्ख़ियां हैं जो मानव इतिहास के लिए एक कलंक का टीका है। पुरानी बातें छोड़िए आज की दुनिया में देखिए, जापान पर बम किसने गिराए? इराक़ व अफ़ग़ानिस्तान और दूसरे देशों में लाखों लोगों की जान किसने ली और किसी जुर्म में ली? इराक़ में जब आरोप साबित न हुआ तो लाखों लोगों की जान लेने के बाद केवल "आई एम सॉरी" कह देना क्या पर्याप्त है? और आज भी बात यह है कि मुसलमानों के नाम पर जो कुछ दुनिया में कराया जा रहा है उसकी पीठ के पीछे उन्हीं ज़ालिमों का हाथ है, जिनको एक बड़े काम के लिए इतने आदमियों को मरवाने में भी कोई अफ़सोस नहीं। अफ़सोस की बात तो यह है कि इस समय दुनिया की लगाम उन्हीं मानवता के हत्यारे लोगों के हाथों में है।

आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वी क़ौमें इससे सबक़ लें और विशेषतयः मुसलमान दोबारा अपनी व्यवहारिक शिक्षा को दुनिया के सामने प्रस्तुत करें जिसने दुनिया को पहले भी मोहित किया था और आज भी संसार को मोहने के लिए यही एक ऐसा नुस्ख़ा है जो यदि आज़मा लिया जाए तो सारी दुनिया मानवता से परिपूर्ण हो सकती है और शायद यह लाइने फिर सच हो जाएं किः

इधर से उधर हो गया रुख़ हवा का।।

अल्लाह का ज़िक्र

क़ुरआन व हदीस की रौशनी में

मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

क़ुरआन व हदीस से मालूम होता है कि बन्दों के लिए आख़िरत में सबसे पसंदीदा चीज़ और सबक़त (आगे बढ़ने) करने वाली चीज़ अल्लाह की याद है। ख़ुदा के जो बन्दे जन्नत के लायक़ होंगे जब जन्नत में पहुंच जाएंगे और जन्नत की नेमतें पा जाएंगे तो अल्लाह तआला कहेगा, और कुछ मांगो, वे हैरत से पूंछेंगे कि इसके बाद भी कोई चीज़ हो सकती है? सबकुछ तो मिल गया, आपका दीदार भी हो गया, सबसे ज़्यादा मज़े की चीज़ अल्लाह का दीदार है। फिर अल्लाह कहेगा कि तुम पर मैं अपनी रज़ा वाजिब कर रहा हूं, और मैं तुमसे कभी नाराज़ नहीं होऊंगा।

अल्लाह की रज़ा सबसे बड़ी दौलत है। इसीलिए क़ुरआन में कहा गयाः "और अल्लाह की रज़ा बहुत बड़ी चीज़ है।" तो ज़ाहिर है कि जब अल्लाह की रज़ा सबसे बड़ी चीज़ है तो यह बड़ी चीज़ मिलेगी। सबसे बड़ी चीज़ से और वह है अल्लाह का ज़िक्र, मानो अल्लाह की रज़ा भी बड़ी चीज़ है और अल्लाह का ज़िक्र भी बड़ी चीज़ है और बड़ी चीज़ से बड़ी चीज़ मिलती है।

ज़िक्र का बहुवचन (जमा) अज़कार है। ज़िक्र के माने याद करने के हैं। उसकी विभिन्न शक्लें हैंः

1– ज़बान से अल्लाह को याद करना

2– दिल से अल्लाह को याद करना

3– तीसरा चर्चा करना है कि ख़ुद भी ज़िक्र करें और दूसरों को भी ज़िक्र करने के लिए कहें

ज़िक्र जब इतनी बड़ी चीज़ है तो अल्लाह ने उसके लिए इन्तिज़ाम भी किया कि जब बच्चा पैदा होता है तो उसके कान में अज़ान दी जाती है और अक़ामत कही जाती है। जो ज़िक्र भी है और इल्म भी। मानो इल्म व ज़िक्र कान में डाल दिया गया। दोनों का रस दिल व दिमाग़ में घोल दिया गया ताकि वह दिल ठीक रहे जिसका संबंध जिक्र से है और वह दिमाग़ भी ठीक रहे जिसका संबंध इल्म से है और दोनों उसी वक़्त सही रुख़ पर लग जाएंगे और चलने लगेंगे। कुरआन में अल्लाह ने जगह–जगह ज़िक्र का आदेश दिया हैः "सो तुम मुझे याद करो मैं तुम्हें याद करूंगा।" इनसान की फ़ितरत में है कि कोई एहसान करे तो उसका शुक्र अदा किया जाएगा वरना वह एहसान फ़रामोश कहलाता है। अल्लाह तआला इनसान को बचपन ही से नेमतों से मालामाल करता रहता है। अगर वह अल्लाह को याद न करे तो कितनी बेवफ़ाई की बात है, कितनी बेशर्मी, बेग़ैरती, और एहसान फ़रामोशी की बात है। तो ज़िक्र इनसान की तबियत में दाख़िल कर दिया गया है। यदि किसी के अन्दर यह बात न हो तो वह एहसान फ़रामोश है।

फिर अल्लाह ने याद करने का तरीक़ा भी बता दिया कि यदि कोई उसको याद करना चाहता है तो इस तरह याद करे, आम तौर से ख़त पर पता लिखा जाता है तो उसी ज़बान में लिखा जाता है, जो ज़बान चल रही हो। अगर उर्दू में पता लिखें तो गुम हो जाएगा। हिन्दी में लिखें तो जल्दी पहुंचेगा, यदि अंग्रेज़ी मे लिखे तो सारी दुनिया में पहुचंता है। इसी तरह ज़िक्र का मामला है कि अरबी में हो तो उसका फ़ायदा ग़ैर मामूली होगा यूं तो अल्लाह तआला ही ज़बानों का ख़ालिक़ है, जो जिस ज़बान में चाहे अल्लाह को याद करे, और जिस तरह चाहे याद करे, उसको फ़ायदा तो होगा, लेकिन जो अल्लाह का दिया हुआ है उसका जो फ़ायदा होगा वह अनुवाद में नहीं हो सकता है। जैसे अस्सलाम अलैकुम कहने पर दस नेकी, व रहमतुल्लाहि कहने पर बीस नेकी, और बरकातुहू कहने पर तीस नेकी लेकिन इसका अनुवाद कर दें तो न दस, न बीस, न तीस, बस मैंने आदाब पूरा किया। आप पर सलामती हो, उससे वह फ़ायदा नही होगा जो अस्सलाम अलैकुम कहने पर होगा। इसीलिए अल्लाह ने सलाम को इतना आसान कर दिया है कि हर व्यक्ति कह सकता है चाहे वह किसी भी क्षेत्र को हो। अल्लाह का नियम है कि वह हर आम व फ़ायदेमन्द चीज़ को आसान कर देता है। इसी तरह ज़िक्र को भी आसान कर दिया। अल्लाह के रसूल स0अ0 ने फ़रमायाः "सबसे अफ़ज़ल ज़िक्र 'ला इलाहा इल्लल्लाह' है।

यह कलिमा ज़िक्र में सबसे अफ़ज़ल है। इसीलिए तसव्वुफ़ के हलक़ो में जो ज़्यादातर कराया जाता है वह यही है और इसको ख़ास अन्दाज़ में भी कर दिया जाता है। लेकिन इसमें जो गर्दन व जिस्म का हिलाना व सर झुकाना है या इसी तरह की और चीज़ें, यह सब उपायों की तरह हैं, यह अस्ल नहीं, लेकिन अब मामला उल्टा हो

गया है। सब लोग इन्हीं उपायों में उलझ गए हैं। अस्ल भूल गए, 'ला इलाहा इल्लल्लाह' की ज़रब (ज़ोर से कहना) लगाने का यह फ़ायदा है कि हमारे अन्दर जो लावबाली पन है वह दूर हो जैसे, आदमी बहरा होता है और उसको बुलाना होता है तो ज़ोर से बुलाना पड़ता है, उसी तरह हम बहरे हैं हमारे दिल को जगाने के लिए दिल पर चोट लगानी पड़ती है और ज़ोर से कहना पड़ता है। अगर हमारा दिल जाग जाए तो इन सब चीज़ों की ज़रूरत ही नहीं। ख़ुद ब ख़ुद वे चीज़ें हासिल हो जाएंगी। इसीलिए अरबों और अजमियों में अन्तर था। अरबों का मामला यह है कि वे सीधे अरबी समझते हैं, और सुबह व शाम इतना अल्लाह का नाम लेते हैं कि उनका ज़िक्र अपने आप हो जाता है और हम लोग गूंगे अजमी हैं, हमारे मुंह से सलाम तक नहीं निकलता, यहां तो पान खाते होते हैं तो मुंह बन्द है, हाथ हिला रहे हैं, इशारा कर रहे हैं, हालांकि यह यहूदियों और इसाइयों का तरीक़ा है। सुबह से शाम तक की दुआएं अरबों को याद हैं और अरबी जानने की वजह से समझ कर वे इसको पढ़ते हैं, इसीलिए उनको ख़ास तौर पर तस्बीह की ज़रूरत नहीं और हमको तस्बीह की ज़रूरत पड़ती है, हम चलते–फिरते नहीं कर पाते तो एक जगह बैठ कर करना पड़ता है।

सिर्फ़ ज़बान से ज़िक्र काफ़ी नहीं बल्कि उसकी पहचान भी मिलनी चाहिए। लोगों ने आज शब्दों का नाम ज़िक्र रख दिया है। पता चला कि दस–दस हज़ार तस्बीह हैं, बैठकर सर हिला रहे हैं, कोई फ़ायदा उसका नहीं हो रहा है, क्योंकि वे ग़फ़लत से कह रहे हैं, हज़रत मुजद्दिद अलफ़े सानी लिखते हैं: "जब आदमी सुब्हान अल्लाह (अल्लाह हर ऐब से पाक है) कहता है तो अल्लाह तआला फ़ौरन हुक्म देता है कि इस बन्दे के ऐब दूर कर दो, और जब कहा, अल्हम्दुलिल्लाह (सारे कमालात और तारीफ़ें आपके लिए हैं) तो अल्लाह ने ऊपर से कहा, उसको कमाल दो, अब जिस दर्जे में हमारा सुब्हानल्लाह, अल्हम्दुलिल्लाह होगा उसी दर्जे में हमारे ऐबदूर होंगे, मानो सुब्हानल्लाह ऐबों को दूर करने का विर्द है। हदीस में आता है कि हर नमाज़ के बाद सुब्हानल्लाहि, अल्हम्दुलिल्लाहि, अल्लाहु अकबर दस–दस बार पढ़ ले तो उसके सारे गुनाह माफ़ हो जाएंगे, लेकिन शैतान भुला देता है, कोई उसकी पाबन्दी नहीं करता।

ज़िक्र कोई मामूली चीज़ नहीं बहुत बड़ी चीज़ है। लेकिन ज़िक्र उसी तरह का होना चाहिए। ज़बान से जब ज़िक्र हो तो ध्यान भी हो, और जब ध्यान होगा तो काम बनेगा, हां यह अलग बात है कि कई बार आदमी पर हमले का ज़ोर होता है, तकल्लुफ़ से काम लेना पड़ता है। इसीलिए कुरआन में है: "जो डर रखते हैं, उन्हें जब शैतान की ओर से कोई ख़्याल छू जाता है, तो वे याद में लग जाते हैं।" सो यकायक उनकी आंखे खुल जाती हैं। एहतिमाम व मुबालिग़ा और तकल्लुफ़ से काम लेते हैं। जब शैतान हमलावर हो तो न चाहते हुए भी अल्लाह का ज़िक्र हो और अल्लाह का नाम लीजिए, इसलिए कि हदीस में आता है कि जब अज़ान होती है तो शैतान बहुत बुरी तरह भागता है। यानि उसकी गत बन जाती है। तो उससे ज़ाहिर है कि अज़ान देने वाले के दिमाग़में हो न हो लेकिन शब्द जो उससे टकरा रहे हैं, तो उसकी हालत ख़राब हो जाती है तो उसके लिए तकल्लुफ़ से काम लेकर जिक्र किया जाए और अल्लाह का नाम लिया जाए तो शैतानी कैफ़ियत ख़त्म हो जाती है।

कुरआन के बहुत से नाम हैं, कुरआन, फ़ुरक़ान, शिफ़ा, किफ़ाया इत्यादि है, इसी तरह उसको ज़िक्र भी कहा गया: "हमने ही ज़िक्र को नाज़िल किया और हम ही उसकी हिफ़ाज़त करेंगे।" इससे पता चला कि कुरआन की तिलावत हम उस अन्दाज़ में करें कि ज़िक्र का ग़लबा हो तो हमारी हिफ़ाज़त होगी। क्योंकि कुरआन में जो सबसे बड़ी ख़ासियत है वह ज़िक्र की है। हर आयत में अल्लाह का नाम आता है और अल्लाह ने अपनी याद के सिलसिले की जो आयतें ज़िक्र की हैं, वे बहुत हैं।

अर्थात यह कि कुरआन सम्पूर्ण जिक्र है। तो जब ज़िक्र के तौर पर कुरआन की तिलावत करेंगे तो हमारी हिफ़ाज़त होगी। सूफ़ियों और बुज़ुर्गों ने भी यह बात लिखी है कि कुरआन से जो तरक़्क़ी होती है, वह अज़कार से नहीं होती, ज़िक्र से होने वाली तरक़्क़ी सुरक्षित नहीं और कुरआन से तरक़्क़ी करने वाले कभी वापिस नहीं होते और ज़िक्र से उन्नति करने वाला गिर जाता है। उसकी मिसाल भी दी कि बालू जमा करके दीवार बनांए वह है ज़िक्र की तरक़्क़ी और कुरआन की तरक़्क़ी ईंट की दीवार है। बालू जमा करना और बनाना आसान है, रोड़िया और ईंट से बनाना मुश्किल है जो मुश्किल होता है वह मज़बूत होता है।

चिंताजनक क्षण

अज़ीज़ुल हसन सिद्दीक़ी

निसंदेह आज़ादी से पहले भी भारतीय मुसलमानों को साम्प्रदायिक शक्तियों की साज़िशों का सामना करना पड़ता था, लेकिन आज़ादी के बाद साम्प्रदायिक संस्थाओं को खेल खेलने का अवसर प्राप्त हो गया। सत्ता चाहे किसी पार्टी की हो, संविधान, क़ानून की धारांए चाहे जो भी कहती हों, किन्तु सरकारी मशीनरी पर नियन्त्रण भारतीय हिन्दुत्ववादियों का ही रहता है और वे अपनी मनमानी करते रहते हैं। अल्पसंख्यकों, दलितों और कमज़ोर वर्ग को दबाकर और कुचल कर रखने की पॉलिसी हर दौर में रही है। चाणक्य ने सत्ता के जो नियम बनाए थे उन पर पूरी तरह से अमल होता है।

1948 ई0 में जबकि देश में स्पेन जैसे हालात पैदा हो रहे थे और मुसलमान देश छोड़कर जा रहे थे, उलमा ने उन्हें दृढ़ता का पाठ ही नहीं पढ़ाया बल्कि उनके क़दम जमाने की भरपूर कोशिश की। क्योंकि देश के स्वतन्त्रा संग्राम में उलेमा ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया और बहुत कुर्बानियां दीं और आज़ादी के बाद एक लम्बे समय तक इस देश की सत्ता व व्यवस्था पर नियन्त्रण उसी वर्ग व गिरोह का रहा जो उलमा की कुर्बानियों से परिचित था इसलिए उलमा की ओर से प्रस्तुत की जाने वाली कुछ मांगे पूरी हो जाती थीं। स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े हुए बहुत से नेता जो सत्ता में दख़ल रखते थे उनकी आंखों में अभी मुरव्वत बाक़ी थी। इसलिए कभी–कभार वे मुसलमानों के आंसू पोंछ दिया करते थे। जबकि आज हालात बिल्कुल विपरीत हैं। साम्प्रदायिक शक्तियों ने स्पेन व इस्राईल का दौरा करके वहां के हालात का गहरी नज़र से जाएज़ा लेकर मुसलमानों को रुस्वा व ज़लील करने और आतंकवादी साबित करने की योजना तैयार की है। स्पेन में लगभग आठ सौ सालों तक इस्लामी झण्डा लहराता रहा लेकिन अचानक क्या हुआ कि मुसलमानों को वहां से निकलना पड़ा, इस बिन्दु पर विचार करने की आवश्यकता है। यदि हम इतिहास का अध्ययन करें तो यह वास्तविकता स्पष्ट होकर सामने आती है कि जिस देश में मुसलमानों ने साहस के साथ क़दम रखा था और उसको सजाया व संवारा था, ज्ञान का केन्द्र बनाया था, आलीशान मस्जिदों का निर्माण कराया था, जहां शत–प्रतिशत लोग पढ़े–लिखे थे, जहां यूरोपवासी आकर साहित्य व विज्ञान का पाठ पढ़ते थे, जब मुसलमान अपने पद से गिर गए, ऐश करने लगे और बड़ी–बड़ी इमारते व मूर्तियां बनाने लगे, दीन की दावत देना भूल गए, आपस में झगड़ने लगे, शासक जोड़–तोड़ व साज़िशों का शिकार हो गए, उलमा सरकारी तनख़्वाहों और पदवी पर गर्व करने लगे तो ईसाईयों को खेल–खेलने का अवसर प्राप्त हो गया और आख़िरकार वह दिन भी आया कि जब मुसलमानों को वह देश खाली करना पड़ा।

वास्तविकता यह है कि स्पेन का इतिहास बहुत ही दिल दहलाने वाला है। इसको पढ़ने के लिए पत्थर का कलेजा चाहिए। हम इस समय इसके हवाले से भारतीय मुसलमानों से संक्षिप्त शब्दों में कुछ कहना चाहते हैं। सबसे पहले हम उनसे यह जानना चाहते हैं कि ऊपर हमने स्पेन के जो हालात और मुसलमानों के पतन और गिरने के जो कारण बताए हैं क्या वे कारण यहां नहीं पाए जाते? क्या हमें उन साज़िशों का ज्ञान है जो हमारे ख़िलाफ़ रची जा रही हैं? क्या हम उन योजनाओं से परिचित हैं जो हमें मिटाने के लिए तैयार की जा चुकी हैं?क्या हमें बाहरी ताक़तों और इस्लाम की अज़ली दुश्मनी की कार्यवाहियों की भनक लग पाती है। क्या हम उन ख़तरों का मुक़ाबला करने की तैयारी कर सके जो बढ़ते चले आ रहें हैं?क्या हमारे खुशहाल लोग ऐश–अय्याशी में नहीं पड़े हुए हैं?क्या हम आपस में झगड़ नहीं रहे हैं?क्या हमारी संस्थाएं आपस में टकरा नहीं रही हैं?क्या हम मसलक की जंग छोड़ चुके हैं? स्पेन में ईसाइयों ने जो उधम मचा रखी थी और सत्ता प्राप्त करने के बाद उन्होंने जिस प्रकार उन्होंने वहां के मुसलमानों को दूसरी श्रेणी का नागरिक बना डाला था, नौकरियों से निकाल दिया था, उनको घुसपैठिया कहा जाने लगा था, उनकी शिक्षण संस्थाओं को तहस–नहस कर डाला था, उन पर आरोप लगाए जाते थे, घरों की तलाशी और गिरफ़्तारी आम हो गयी थी, बेगुनाहों को बेगुनाही के जुर्म में सजा दी जाती थी, सवाल यह है कि हमारे प्रिय देश में आज यह सब कुछ नहीं हो रहा है फिर भी हम ग़ाफ़िल हैं और अपने हाल में मस्त हैं।

निसंदेह साहस को तोड़ने वाले हालात के बावजूद हम प्यारे देश में जीवित हैं, चल–फिर रहे हैं, व्यापार कर रहे हैं, ...(शेष पेज 7 पर)

मुहम्मदी जीवन

क़ुरआन करीम के आइने में

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

"यक़ीनन तुम्हारे पास तुम ही में से रसूल आ चुके, तुम्हारी तकलीफ़ जिनके लिए बहुत असहनीय है तुम्हारी (भलाई) के बहुत इच्छुक हैं ईमान वालों के लिए तो बड़े शफ़ीक़ बहुत मेहरबान हैं। (सूरह तौबाः 128)

पूरी मानवता पर यह अल्लाह का विशेष करम है कि उसने मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह स0अ0 को जो सभी जहानों के लिए रहमत हैं आख़िरी नबी बनाया। दुनिया जहान के लिए रहमत बनाकर भेजा और हिजाज़ (अरब) वालों के लिए यह विशेष ईनाम हुआ कि नबी का चुनाव उनके ख़ानदान में किया गया। यह आप स0अ0 के आने का सदक़ा है कि हिजाज, पवित्र हिजाज़ कहलाया और फिर रसूलुल्लाह स0अ0 द्वारा जो जमाअत तैयार हुई जिसको दुनिया में रब का संदेश फैलाना था वह एक ऐसी पवित्र जमाअत घोषित की गयी कि उनमें का एक–एक व्यक्ति हिदायत के आसमान का सितारा बताया गया। यह सहाबा कि वह जमाअत थी जिसके सामने आप स0अ0 की मुबारक ज़िन्दगी का एक–एक क्षण था। उनमें वे भी थे जो आरम्भ से साथ के लाभान्वित रहे और उन्होंने आप स0अ0 की पवित्र ज़िन्दगी का एक एक हिस्सा अपने जीवन में उतार लिया था।

मानवता की हिदायत व सुधार के लिए अल्लाह ने जब–जब नबी भेजा, उसी क़ौम में भेजा जिस क़ौम की हिदायत वांछित थी। ताकि अपनेपन का आकषर्ण पैदा हो और परायापन रास्ते में रुकावट न बने। ताकि पिछले जीवन का रिकार्ड सामने हो और उसकी पड़ताल की आवश्यकता न हो। आप स0अ0 मक्का मुकर्रमा में आए। आप स0अ0 के सच्चे जीवन के दिन–रात पूरी क़ौम के सामने थे। नुबूव्वत से पहले सादिक़ व अमीन आप स0अ0 लक़ब था। एक–एक व्यक्ति आपकी दयानत व अमानत और पवित्रता व पाकदामनी पर पहले ही से ईमान रखता था। पूरी क़ौम के लिए यह एक बहुत ही सकारात्मक पहलू था, जिसमें अत्यधिक आकर्षण था। आप स0अ0 ने दावत का जब व्यवस्थि रुप से आरम्भ की तो इस वास्तविकता की ओर इशारा किया गया, अल्लाह के कलाम में आप स0अ0 की ज़बानी यह कहलवाया जा रहा है।

"तो इससे पहले तुम्हारे बीच एक उम्र गुज़ार चुका हूं फिर भी तुम अक़्ल से काम नहीं लेते।" (यूनुसः 16)

आप स0अ0 ने सभी लोगों को एकत्र किया। रसूलुल्लाह स0अ0 की चालिस साल की ज़िन्दगी का एक–एक पन्ना सभी लोगों के सामने था। इसीलिए आप स0अ0 ने पहाड़ पर चढ़ कर सवाल किया कि पहाड़ की दूसरी तरफ़ जिधर तुम नहीं देख रहे हो और मैं देख रहा हूं अगर मैं कहूं कि एक लश्कर तुमपर हमला करना चाहता है तो क्या तुम स्वीकार करोगे? लोगों ने कहा कि क्यों नहीं, आप स0अ0 की पूरी ज़िन्दगी हमारे सामने है, हम क्यों न स्वीकार करें, इस समय आप स0अ0 ने फ़रमायाः "मैं तुम लोगों को डराने वालाएक सख़्त अज़ाब के बारे में। (सही बुख़ारी)

यह (तुम ही में से एक रसूल) का प्रदर्शन था। किसी के लिए गुंजाइश न थी कि वह आपकी जीवन पर उंगली रख सके। उस पर कोई टिप्पणी कर सके कि आप स0अ0 की पिछली पूरी ज़िन्दगी उन लोगों के सामने थी। इनकार की यह शक्ल तो संभव न थी। इसलिए न मानने वालों में से एक भी आप स0अ0 की मुबारक ज़िन्दगी पर कोई टिप्पणी न कर सका। फिर रसूलुल्लाह स0अ0 की दूसरी खूबी इसमें जो बयान की गयी है वह सभी के लिए अत्यधिक प्रेम व लगाव व कृपा है। साफ़ कहा जा रहा है कि तुम्हारी कोई भी तकलीफ़ उनके लिए असहनीय है। इसके उदाहरण पिछले लेखों में कई बार आ चुके हैं कि उम्मत के लिए न आप स0अ0 को आख़िरत की तकलीफ़ बर्दाश्त थी और न दुनिया की। आप स0अ0 ने उम्मत को ऐसी शिक्षा दी जो दोनों जहां कि लिए रहमत व नजात का साधन है। दुनिया में भी किसी की तकलीफ़ को देखकर आप स0अ0 बेचैन हो जाते थे। रबिया क़ौम के प्रतिनिधी मण्डल के आने के अवसर पर उनकी बदहाल ज़िन्दगी देखकर आप स0अ0 के चेहरे का रंग बदल गया और आप स0अ0 ने उनके लिए लोगों को ध्यान दिलाया और जब उनके लिए व्यवस्था हो गयी तो ख़ुशी से आप स0अ0 का चेहरा मुबारक दमकने लगा।

नमाज़ के फ़र्ज़ होने के अवसर पर भी केवल उम्मत पर रहम के विचार से बार–बार अल्लाह के दरबार में तश्रीफ़ ले जाते रहे, यहां तक कि पचास नमाज़ो के बजाए सिर्फ़ पांच नमाज़ों की फ़र्ज़ियत बाक़ी रही और उस पर करम यह कि सवाब पचास नमाज़ों का बाक़ी रखा गया। आप स0अ0 की पूरी ज़िन्दगी और आप स0अ0 की शिक्षाएं

व इरशादात उसका बेहतरीन प्रदर्शन हैं।

आप स0अ0 ने जो सख़्त तकलीफ़ें झेलीं। सहाबा–ए–रसूल स0अ0 के साथ बहुत ही ज़ालिमाना रवैया अपनाया गया। यहां तक कि उनकी ज़बानों से यह शब्द निकले कि ऐ अल्लाह के रसूल आप इन लोगों के लिए बद्दुआ क्यों नहीं करते। मगर आप स0अ0 ने हमेशा दुआएं दीं। सिर्फ़ इसलिए कि शायद यह लोग रास्ते पर आ जांए और आख़िरत की तकलीफ़ से बच जांए, वरना उनकी नस्लें ईमान लाने वालीं हेागीं।

सारी इनसानियत के लिए आप स0अ0 का दिल धड़कता था। और दुनिया व आख़िरत की कोई भी तकलीफ़ किसी को पहुंचे लगता था कि वह आपको पहुंच रही है।

किसी का इन्तिक़ाल हो जाता तो आप स0अ0 उसके घर वालों के लिए बेचैन हो जाते और कहते कि उसने जो कुछ जाएदाद और माल छोड़ा वह उसके वारिसों का है लेकिन अगर कोई ज़रूरत मन्द है तो उसका पोषण मेरे ज़िम्मे है।

क्योंकि उम्मत की नाकामी और आख़िरत में उम्मत के लोगों की रुस्वाई का आप स0अ0 को ग़म था और ऐसी कुढ़न थी कि कुरआन मजीद उसकी गवाही देता है। इसलिए उम्मत के एक–एक शख़्स के लिए आपको हिदायत की चिन्ता थी। और चिन्ता भी ऐसी कि उसको कुरआन मजीद में हिस्र की संज्ञा दी गयी। आपकी अत्यधिक इच्छा थी कि सब सीधे मार्ग पर आ जांए, यह ऐसी तीव्र इच्छा थी कि कुरआन मजीद आप स0अ0 को बार–बार तसल्ली देता है, एक हदीस में आता है कि आप स0अ0 एक बार सजदे में गिर गए और ''उम्मती–उम्मती'' के शब्द आपकी मुबारक ज़बान पर थे।

आप स0अ0 को लोगों की हिदायत की ऐसी तड़प थी कि अल्लाह तआला ने आप के लिए बार–बार तसल्ली के शब्द फ़रमाए और यह भी स्पष्ट कर दिया कि हिदायत देना तो अल्लाह का काम है आपका काम तो बात का पहुचां देना है।

"आप का काम तो केवल पहुंचा देना है।" इस आयत में ही अल्लाह तआला ने आप स0अ0 की रहमत की शान का वर्णन किया और इरशाद हुआ, ''ईमान वालों के लिए बहुत ही शफ़ीक़ और मेहरबान'' हदीस में आता है कि आप स0अ0 अपने सहाबा के हाल पूछते रहते थे, हर एक की फ़िक्र करते, उनकी ज़रूरतों का बन्दोबस्त करते।

शेष : चिंतांजनक क्षण

..... शादी–ब्याह के शानदार आयोजनों में व्यस्त हैं, चुनाव में वोट भी देते हैं, कभी–कभी सीना फुला कर कुछ कह–सुन भी लेते हैं, और इस बात पर ख़ुशियां भी मना लेते हैं कि माशा अल्लाह हमारी संख्यां बढ़ती जा रही है लेकिन हमारा ध्याना कुरआन के स्पष्ट आदेश की ओर क्यों नहीं जाता कि अल्लाह के आदेश से कम संख्या रखने वाले अधिक संख्या रखने वालों पर हावी हो जाते हैं। इस वास्तविकता को स्वीकार किए बग़ैर कोई चारा नहीं है कि दुनिया में क्वालिटी की क़दर है न कि संख्या की। क्या यह वास्तविकता नहीं है कि सोना और हीरा दुनिया में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। माशा अल्लाह मस्जिदों का ख़ूब निर्माण हो रहा है, नमाज़ियों की संख्या भी बढ़ रही है और मदरसे भी आबाद हैं, लेकिन बुज़ुर्गों की ख़ूबी बाक़ी नहीं रही। याद रखने की ज़रूरत है कि जब इन्क़िलाब के तेज़ धारे बस्तियों का रुख़ करते हैं तो एक–एक तिनका बहा ले जाते हैं। सवाल यह है कि तूफ़ान का रुख़ मोड़ने के लिए हमने क्या तैयारियां की हैं।

मौसम विभाग यदि तूफ़ान के आने का संकेत दे दे तो बस्ती का एक–एक व्यक्ति चौकन्ना हो जाता है और उपाय करने लगता है। मगर हमारी बेहिसी का आलम यह है कि हम खुली आंखों से देख रहे है कि तूफ़ान बस आने ही वाला है मगर हम ग़ाफ़िल हैं। हमारे अन्दर कोई बदलाव नहीं, सुधार की कोई चिन्ता और प्रयास नहीं, जहां कल थे वहीं आज भी हैं। अल्लाह और उसके रसूल स0अ0 के आदेशों की अवहेलना कर रहे हैं, कर्तव्यों का निर्वाहन नहीं कर रहे हैं, हमारी घरेलू ज़िन्दगी अजीरन नज़र आती है, ख़ानदानी झगड़े, मुक़द्मा बाज़ी, फ़िज़ूल ख़र्ची और रस्म व रिवाज में गले तक डूबे हुए हैं, ब्याज की मार अलग है, पड़ोसियों के साथ संबंध अच्छे नहीं है, कहने का अर्थ कि कोई चूल सही नहीं है।

मरीज़ को अगर अपने ख़तरनाक मर्ज़ का ज्ञान हो जाए और वह जमकर इलाज व परहेज़ करे तो अल्लाह के हुक्म से फ़ायदा हो जाता है लेकिन बीमारी को बीमारी न समझे और इलाज व परहेज़ से जी चुराए तो वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता है। उलमा बीमारी की निशानदेही करते हैं, नुस्ख़ा भी तैयार करते हैं, मगर हमारा हाल यह है कि तक़रीरें सुनने के बाद दामन वहीं जलसे की जगह पर झाड़कर चले आते हैं।

वह बेईमान किन्तु मैं उससे बड़ा बेईमान

मौलाना मुहम्मद इलियास मुहीउद्दीन नदवी

वह नगर के सम्मानित लोगों में से था। उसकी गिनती समझदार, बुद्धिमान, अपना मत रखने वाले व दीनदारों की श्रेणी में होती थी। संस्थाओं की धनराशियां उनके पास जमा रहती। वह स्वयं भी धनवान व ख़ुशहाल ही नहीं अपितु एक सफल व्यापारी भी था। शायद उसने एक दिन अपनी निजी जमापूंजी के साथ संस्था की अपने पास रखी धनराशि भी व्यापार में लगा दी जो बदक़िस्मती से घाटे की नज़र हो गया। उसका धार्मिक दृष्टिकोण से ऐसा नहीं करना चाहिए था और न उसने इस जमा पूंजी को व्यापार में लगाने की आज्ञा उस संस्था से ली थी। जब आवश्यकता पड़ने पर इस रक़म को लेने के लिए उससे कहा गया तो वह उसको वापिस नहीं कर सका। शायद मध्यपूर्व के उस आर्थिक संकट का वह भी शिकार हो गया था जिसने कुछ सालों पहले अच्छे–अच्छों को रातों रात आसमान से ज़मीन पर पहुंचा दिया और धनवान देखते ही देखते निर्धन हो गए।

फिर क्या था, न केवल उस संस्था में बल्कि पूरे शहर व समुदाय में उसका चर्चा होने लगा और कुछ ही दिनों में उसको समुदाय की उन सभी संस्थाओं से निकाल दिया गया जिसमें वह था। निसंदेह समुदाय की संस्थाओं में उसके रहने का कोई अर्थ भी नहीं था। उन साहब का जब भी मुझे ख़्याल आता है बड़ा रहम आता है। क्योंकि उनका अतीत बुरी अवस्था का नहीं था। उनको यह दिन क्यों देखने पड़े यह गांठ आज भी मेरे लिए बंधी है शायद उन्होंने अपने जीवन में कोई ऐसी ग़लती की जिसका ख़ामियाज़ा आज भुगतना पड़ा है। उन्होंने शायद किसी का दिल दुखाया है या किसी को आर दिलाया है, जो अल्लाह को नापसंद हुआ है।

इस घटना के बाद लगातार मेरा ज़मीर मुझे धिक्कारने लगा कि तुम तो उससे बड़े कपटी हो, अन्तर तो केवल यह है कि उसने तो धन–सम्पदा में कपट किया तुम तो दीन का लबादा ओढ़कर रोज़ दीनी कामों और शरई मामलों में उससे बड़ी कपट करते हो। उसका ऐब सामने आ गया और वह बदनाम हो गया लेकिन उससे बड़े कपटी होने के बावजूद अल्लाह तआला ने तुम्हारे ऐबों को छुपाया।

मैंने ज़ाती तौर पर अपने अतीत का निरीक्षण किया तो एक से बढ़कर एक दीनी कपट (ख़यानत) दिमाग़ की स्क्रीन पर सामने नज़र आने लगीं। यहां तक कि मैं किसी को मुंह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहा। मैं यह सोच–सोच कर अब परेशान होने लगा कि उस समय मेरा क्या हाल होगा कि जब अल्लाह तआला के यहां मेरी पेशी होगी। उस वक़्त न मैं अपने इन गुनाहों का इनकार कर सकूंगा और न उनको झुठला सकूंगा और यदि अल्लाह ने माफ़ न किया तो उसकी सज़ा मुझे भुगतनी पड़ेगी।

दस बारह साल पहले मैं एक दिन एक संस्था की परामर्ष सभा में उपस्थित था। सबसे महत्वपूर्ण पद लेने के लिए एक साहब बहुत ज़िद कर रहे थे। अपनी सही राय, दीन दारी और बहुत सारी ख़ूबियों की वजह से प्रस्तुत किए गए सभी नामों पर उनका नाम भारी था। किन्तु चूंकि उनके विचार मेरे विचार से मेल नहीं खाते थे इसलिए मैंने उनके बजाए एक ऐसे व्यक्ति का नाम दे दिया जो उनसे अच्छा और श्रेष्ठ तो था ही नहीं बल्कि उनके बराबर का भी नहीं था लेकिन मैंने अपने पेश किए गए प्रतिनिधी की ख़ूबियों को इस तरह बयान किया कि सभा में उपस्थित सभी लोग उससे सहमत हो गए। हालांकि मेरी अन्तरात्मा स्वयं अन्दर ही अन्दर मुझे धित्कार रही थी कि तुमने केवल अतिश्योक्ति से काम लिया है, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था, नतीजा क्या था?संस्था का उसके प्रतिनिधित्व में काम तो चलता रहा लेकिन कोई ख़ास तेज़ी नहीं हुई और बहुत सारे ख़ैर के काम होने से रह गए। मेरा दिल आज भी मेरी निंदा करते हुए पुकार पुकार कर कह रहा है कि राय देने में अपनी इस ग़लती के कारण उसका ख़ामियाज़ा क़यामत के दिन तुझे ही भुगतना पड़ेगा।

एक महत्वपूर्ण संस्था में एक साहब चुने गए और वे हर प्रकार से उचित थे। चूंकि मेरी उनसे बनती नहीं, वे मेरी खुशामद नहीं करते और अपनी संस्था में सभाओं में मुझे सम्मान के साथ निमन्त्रण नहीं देते, इसलिए मैं हर जगह हर सभा में उनके चुनाव पर उंगली उठाता हूं और उनको नाकारा साबित करने का पूरा प्रयास करता हूं। यहां तक कि वह शरीफ़ इनसान अपने पद से इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाते हैं और वह संस्था उनकी योग्यताओं से वंचित हो जाती है। ज़ाहिर बात है कि उनके ख़ैर से दीनी संस्था के वंचित होने का कारण मैं बना और मैं अपनी क़ौम का सबसे बड़ा कपटी निकला।

मुझे अपनी संस्था के काम से अक्सर बाहर जाना पड़ता है। एक दिन केवल डेढ़ सौ किलो मीटर पर स्थित दूसरे शहर जाने की आवश्यकता पड़ी। मैं बस या रेल से जा सकता था लेकिन "माले मुफ़्त दिले बेरहम" के तहत मैंने कार से जाने का फ़ैसला किया। छोटी कार किराये पर मिल सकती थी लेकिन मैंने Innova गाड़ी बुक की वह भी एसी (AC) वाली। जबकि न मेरे घर में एसी है, न मेरे आफ़िस में, न मैं उसका आदी हूं, और न मुझे इसके बिना कोई तकलीफ़ होती है। 1000/– में होने वाला काम मैंने लगभग 5500/– में किया। संस्था का 4500/– का नुक़सान किया। हर माह मुझे एक दो बार इस प्रकार के सफ़र पर जाना पड़ता है। मैंने हिसाब लगाया तो हर माह दस हज़ार रूपये के हिसाब से अब तक एक साल में एक लाख और पिछले लगातार दस साल इस संस्था में रहने के बाद मैंने दस लाख रूपये अपनी संबंधित संस्था के अपने इस दीनी कपट से नष्ट किए। मेरे घर में चौबिस घंटे केवल पंखा चलता है, लेकिन मुझे अपने ऑफ़िस में एसी चाहिए। एसी लगाने से पहले संस्था का बिल केवल 1000/– था, अब हाल यह हो गया है कि जब भी आफ़िस आता हूं तो मेरा हाथ पहले एसी आन करने के लिए बढ़ता है, परिणाम यह है कि इलेक्ट्रिक बिल लगभग 2500/– हो गया है। दस साल अगर मैं ज़िन्दा भी रहा तो ढाई लाख मैंने केवल अपनी इच्छापूर्ति व ऐश के लिए ख़र्च कर दिए। स्वयं अपने लिए जब मैं तरकारी या फल खरीदने बाज़ार जाता हूं तो दुकान–दुकान का चक्कर लगाकर थक जाता हूं, केवल यह देखने के लिए कि 120/– का सेब 110/– में किस दुकान पर मिलेगा। 60 रूपये का मिर्च 50 रूपये का कहां मिलता होगा। लेकिन जब मुझे अपने आफ़िस के लिए फ़र्नीचर की आवश्यकता पड़ी तो शहर की सबसे बड़ी दुकान जाकर सबसे दिलकश और चमकती हुई मेज़ ले आया ताकि आने वाले पर मेरी शान का अच्छा असर पड़े।

मेरे घर में जब मेहमान आते हैं तो चाय और शरबत के साथ मुश्किल से बिस्कुट पेश करता हूं। लेकिन संस्था में आने वालों की मेहमान नवाज़ी हमेशा बादाम, पिस्ता, अखरोट और ड्राई फ़्रूट से करता हूं।

मैं जब आफ़िस में बैठता हूं तो उसमें रखे हुए फ़ोन का इस्तेमाल दिन में कई बार अपने काम के लिए होता है। काग़ज़, क़लम और पेन्सिल और कार्यालय के उपयोग की दूसरी चीज़ों का जाने अनजाने तरीक़े पर अपनी ज़ाती ज़रूरत के लिए इस्तेमाल करता हूं, उसका तो हिसाब ही नहीं और न उसको मैं दूर–दूर तक दीनी ख़यानत (बेईमानी) समझता हूं। मैं आफ़िस के पंखे के नीचे बैठकर आवश्यकतानुसार आने वाले मेहमानों के साथ निजी व्यापारिक बातें भी करता हूं। इसको आज तक मैंने गुनाह भी नहीं समझा। मुझे संस्था के काम से भारत के बाहर यात्रा करनी पड़ती है तो नान स्टाप फ़्लाइट बुक करता हूं। हालांकि इसका किराया तीस हज़ार रुपये है हालांकि केवल दो घंटे किसी जगह रुक कर जाने वाली फ़्लाइट का किराया अठ्ठारह हज़ार है। अपने घर या गांव में रोज़ाना दो चार घंटे नष्ट करता हूं, लेकिन सस्था के बारह हज़ार बचाने के लिए मुझे दो घंटे किसी बीच के एयरपोर्ट पर बिताने के लिए रुकना बर्दाश्त नहीं। मेरे पास अपनी गाड़ी है। दिन भर घर में इस्तेमाल होती है, लेकिन संस्था में उपस्थिति के लिए आफ़िस फ़ोन करके गाड़ी मंगवा कर आने की मेरी आदत है। मैं संस्था का ज़िम्मेदार होने की हैसियत से मीटिंग के दौरान केवल चाय–बिस्किट पर संतोष नहीं करता, तरह–तरह के मेवे, फल या अच्छे पकवान की व्यवस्था करने का आफ़िस वालों को आदेश देता हूं, घर की मरम्मत का काम खुद खड़े होकर करता हूं, लेकिन संस्था के मरम्मती कामों के लिए मेरे पास समय नहीं। मैं इस झंझट में पड़ना नहीं चाहता। मैं सबसे गर्व से यह कहता हूं की मैं अपनी संस्था में सम्मानीय कार्य करता हूं, मासिक वेतन भी नहीं लेता लेकिन यदि उपरोक्त सुविधाओं का हिसाब लगाऊं तो सालाना इस मद में ही एक तिहाई स्टाफ़ का वेतन मेरे किए हुए आर्थिक नुक़सान से दिया जा सकता था।

कहने का अर्थ यह कि सुबह से शाम तक रोज़ मुझसे दसियों बार क़ौमी व मिल्ली कामों में ऐसी ही बेईमानी होती रहती है। जिसका ख़मियाज़ा पूरी क़ौम को भुगतना पड़ता है। लेकिन मुझे अपने इस कपट में फ़्राड करने वाले उपरोक्त व्यक्ति से बड़े कपटी होने का एहसास तक नहीं। कपट तो कपट है, चाहे वह माल में हो या दीनी कामों में। उपरोक्त कपट का प्रभाव तो केवल कुछ लोगों पर पड़ा लेकिन मेरी कपट का असर पूरी मिल्लत पर पड़ा और मेरे कारण पूरी क़ौम कई बार संभावित लाभ से वंचित रह गयी।

इस पूरे परिदृश्य में अब मुझे यक़ीन हो गया है कि वह व्यक्ति यदि कपटी था तो मैं उससे बड़ा कपटी था। अन्तर केवल इतना रहा कि उसको अपने गुनाह का एहसास हुआ, मुझे एहसास नहीं, उसकी ग़लती सामने आ गयी, लेकिन मुझ पर अल्लाह की रहमत का मामला हुआ।

औरत क्या कुछ कर सकती है?!!

गुल अफ़्शां आबिद

औरत क्या कुछ कर सकती है?!! यह एक बहुत ही पुराना किन्तु विचारणीय प्रश्न है!

पश्चिम का व्यवहारिक सिद्धान्त कहता है कि औरत सब कुछ कर सकती है हालांकि यह दावा मर्दों के बारे में भी ठीक नहीं है कि ''मर्द सब कुछ कर सकता है'' हद यह है कि वह अपने जिस्म के टुकड़े, अपने नवजात शिशु को पाल सकता है।

पारम्परिक धार्मिक लोगों का विचार है कि ''औरत सबकुछ नहीं कर सकती'' किन्तु यह बात मर्द पर भी उसी प्रकार साबित होती है जैसे औरत पर! ''स्त्री व पुरुष समानता का विचार'' वैचारिक एवं व्यवहारिक दोनों स्तर पर दिवालियेपन का शिकार है! ''औरत दूसरी श्रेणी की प्राणी है'' की सोच का आधार उसकी बनावट, कमज़ोरी का अनुचित विचार है। निसंदेह औरत बनावट के आधार पर कमज़ोर है किन्तु यह उसका ऐब नहीं, बिल्कुल नहीं। वास्तविकता यह कि जिन लोगों ने दोनों प्राणियों को "समानता के स्वयंभू ढांचे में रख दिया है उन्होंने बड़ी ग़लती और ज़्यादती की है।"

जिन लोगों ने औरत को "कमज़ोर वर्ग" में डाल रखा है उनकी अक़्ले पेंच दर पेंच गिरोहों में बन्द हैं। औरत इसलिए कमज़ोर घोषित कर दी जाए कि वह पहाड़ खोदकर दूध की नहरें नहीं निकाल सकती या उस प्रकार के बेवकूफ़ी भरे कामों का बेड़ा नहीं उठा सकती.... ...बताइये कितनी निम्न स्तर की सोच है। अस्ल यह है कि मर्द और औरत दोनों किसी शारीरिक बनावट के प्राकृतिक भिन्नता, दोनों के स्वभाविक कर्तव्य, दोनों की आन्तरिक व बाह्य बनावट, दोनों की शारीरिक व मानसिक योग्यता व क्षमता और प्राकृतिक विशेषताओं का ध्यान रखिए, फिर उस कुदरती बनावट की रोशनी में दोनों के कारनामों का जाएज़ा लीजिए तो स्वीकार करना पड़ेगा कि अपनी–अपनी जगह दोनों ''महान'' हैं किन्तु सांस्कृतिक रूप से दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। जब उन दोनों के स्वाभाविक कर्तव्य, व्यवहारिक सीमाओं के साथ एक होते हैं तब सभ्यता व संस्कृति के फूल खिलते हैं, किन्तु यूरोपीय बुद्धिजीवियों की उल्टी सोच है। खजूर और नारियल के पेड़ की समानता देखकर मान लिया गया कि दोनों समान हैं और समानता का यह विचार अपना लिया कि दोनों के फल एक समान हैं। इससे भी अधिक हास्यप्रद बात न कही गयी कि "यदि नारियल को खजूर ही की पंक्ति में खड़ा कर दिया जाए तो नारियल अपने स्वाभाविक फल के साथ साथ खजूर भी पैदा करना आरम्भ कर देगा, आख़िर इसमें क्या कमी है कि खजूर पैदा नहीं कर सकता"?!!

औरत यदि ममता, अपनी चाहतों की और अपनी उन प्राकृतिक योग्यताओं और ख़ूबियों की (जो उसके स्वभाव और शरीर में पायी जाती हैं की) कुर्बानियां किसी महान उद्देश्य हेतु देती है तो वह "महान औरत" है। आज से डेढ़ हज़ार साल पहले फ़ारान की घाटी में सत्य व हक़ की मशाल जली थी उसके पहलू में आकर जहां "मर्दे हक़" ने अपनी अंधेरी ज़िन्दगी को रोशन कर दिया था। उसके साथ स्त्री भी थी और उस सत्य की मशाल को उठाकर आगे भी बढ़ती थी। वफ़ादारी की जिन राहों से मर्द गुज़रा था औरत उनसे कभी पीछे नहीं रहती थी। संभव है कि बनावट का अन्तर हो तो कैफ़ियत में औरतें मर्द के कंधे से कंधा मिलाए नज़र आती हों, बल्कि आत्मिकता व लिल्लाहियत का जज़्बा, तक़्वा व आन्तरिक निरीक्षण और इबादत में तो शायद औरत श्रेष्ठ ही नज़र आए। इस क्रम में पिछले युग के सैकड़ों पवित्र व सम्मानित नाम लिये जा सकते हैं। जिनके ज्ञान की ख़ुशबू जीवन के हर भाग में बिखरी पड़ी है और पुरुष भी

उससे लाभान्वित हुए हैं।

इन महान औरतों में से हज़रत ख़दीजा रज़ि0 की बेजोड़ अक़्ल व बुद्धिमता और प्रचार व दावत की राह में उनकी त्याग व कुर्बानी का वर्णन पढ़िए। हज़रत फ़ातिमा बिन्त ख़त्ताब रज़ि0 की दृढ़ता और ग़ैरते हक़ की ललकार सुनिए, वहशियाना हिंसा के सामने हज़रत सुमैय्या रज़ि0 की दृढ़ता और श्रेष्ठतर लक्ष्य की ख़ातिर उनकी जान देने की अदा से सबक़ सीखिए, उहद की जंग में हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ि0, हज़रत उम्मे सलीम रज़ि0 को भी पानी पिलाने और कभी ज़ख़्मियों की मरहम पट्टी करते हुए देखिए, हज़रत उम्मे अतिया रज़ि0 को रसूलुल्लाह स0अ0 के समय की सात जंगों में शामिल होकर इस्लामी सिपाहियों के लिए खाना पकाने, सामान की सुरक्षा करने, मरीज़ों की तीमारदारी करने के दृष्य देखिए, क़ादसिया की जंग के अवसर पर हज़रत ख़न्सा रज़ि0 की महानता और उनके ईमान में वृद्धि करने वाले भाषणों के मोती चुनिए, ख़न्दक़ की जंग के अवसर पर हज़रत सफ़िया रज़ि0 की बहादुरी पर कुर्बान जाइए, उहद की जंग की ख़बर सुनकर दौड़ती भागती आ रही हैं, हज़रत फ़ातिमा रज़ि0 की बेताबी व बेक़रारी देखिए, जंग यरमूक में हज़रत असमा बिन्त यज़ीद की बहादुरी व मर्दाना हिम्मत पर नज़र डालिए कि ख़ेमे की एक लकड़ी से नौ–नौ रोमी सैनिकों को मौत के घाट उतार रही हैं, अजनादीन की जंग में हज़रत उम्मे हकीम के हौसलों और दिलों पर कुर्बान जाइए कि ज़ख़्मी शेरनी की तरह बढ़–बढ़ कर दुश्मनों पर हमला करती हैं और सात–सात रोमियों को जहन्नम रसीद करती हैं।

यह देखिए कि हज्जाज के आदेश से हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की लाश सूली पर लटकायी जा चुकी है, महानता व दृढ़ता की मूरत हज़रत असमा रज़ि0 अपनी एक कनीज़ को साथ लेकर घटनास्थल पर पहुंचती हैं और बिजली के समान खुली फ़िज़ा में ग़ैरते हक़ की ललकार यूं बुलन्द करती हैं: "ऐ हज्जाज! तूने उसकी दुनिया बिगाड़ दी, उसने तेरी आख़िरत तबाह कर दी।" और तीन दिनों से सूली पर लटकी हुई लाश की ओर इशारा करके यूं कहती हैं: "क्या अभी इस घुड़सवार के लिए अपनी सवारी से उतरने का समय नहीं आया।"

37 हिजरी में मुहम्मद बिन अबी बकर मिस्र में शहीद कर दिए गए और गधे की खाल में रखकर उनकी लाश जला दी गयी। उनकी माता हज़रत असमा बिन्त अमीस रज़ि0 इस मानवतारहित हरकत का पता चला तो गुस्से से लाल पीली हुईं मगर सब्र की मूरत बनकर नमाज़ पर जा खड़ी हुईं। हज़रत जुनैरा रज़ि0 बनू मख़ज़ूम की दासी थीं, इस्लाम स्वीकार किया तो अबू जहल ने वह सितम ढाया कि आंख की रोशनी जाती रही, अबूजहल ने कहा, लात व उज्ज़ा ने तुझे अंधा कर दिया है उन्होंने कहा: लात व उज्ज़ा को तो ख़बर तक नहीं, यह आसमान का फ़ैसला है और मेरा रब इस पर क़ादिर है कि चाहे तो मेरी आंख की रोशनी वापस कर दे, अतः दूसरे दिन जब वे सोकर उठीं तो आंख की रोशनी आ चुकी थी।

वे समय की सत्य को पहचानने वाली, साहसी, अल्लाहवाली औरतें थीं जो नुबूव्वत के चमन में फूल बनकर महकीं थीं। हमारी औरतें ख़ुदाबेज़ारी की ज़मीन पर कांटे बनकर परवान चढ़ती हैं और भावनाओं व इच्छाओं में बहकर जीवन की राहों पर चलती हैं। काश ऐसा होता कि शर्म से सर झुकाकर आंसुओं की कुछ बूंदे बहा पातीं, बेहिसी की चादर हटा पातीं, फ़रेब की दीवारें गिरा पातीं, सदियों पीछे मुड़कर देख पातीं, रसूलुल्लाह स0अ0 के ज़माने के अनुसार जीवन व्यतीत करतीं, मानवनिर्माण के अनमोल खज़ाने से मालामाल होतीं, सकारात्मक इस्लामी कार्यों की ख़ातिर अपने पतियों के लिए "उभारने वाली" बन पाती और अज़वाज मुतहरात के नमूने को अपनी ज़िन्दगी में समाहित कर पातीं तो शायद इस्लामी मिल्लत इस प्रकार पतन का शिकार न होती। मानव समाज बुराइयों व फ़साद का इस प्रकार उद्गम न बनता।

ऐ काश ऐसा हो पाता..... कि आज की मुसलमान औरतें फिर पुराने ज़माने को आवाज़ दे पातीं! और पुराने ज़माने से दिल लगा पातीं!!

इस्लाम से दूरी क्यों?!

मौलाना अब्दुल अज़ीज़ नदवी

इस्लाम एक ऐसा धर्म है जो सम्पूर्ण है और इस्लाम धर्म की एक व्यापक सभ्यता है, बल्कि बिना किसी प्रकार के भय के यह घोषणा व चैलेंज किया जा सकता है कि इस्लाम ही सच्चा धर्म है और मुक्ति का एकमात्र साधन है। इस्लाम की दी हुई सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक समरसता ही वास्तविक सभ्यता व संस्कृति है, कला व शिल्प है, जीवन यापन व रहन–सहन का तरीक़ा है, बाक़ी जो भी है वह व्यर्थ, वहम, असत्य, गुमराही व जुनून है। इस्लाम एक स्पष्ट व तर्कसंगत वास्तविकता है जिसको ठुकराना या उसका इनकार करना ज्ञान व बुद्धि, ज़िन्दगी व अमल या सोच–विचार किसी भी रूप से संभव नहीं है। इस्लामी उलमा, चिन्तकों व सुधारकों ने हर स्तर पर और हर दौर में हर जगह इस वास्तविकता को इस प्रकार प्रकाशित किया है और वर्तमान युग में भी इस महान संघर्ष से उम्मत ख़ाली नहीं है।

ख़ैर! समस्या यह नहीं है कि इस्लाम को जाना नहीं जा रहा है और उसकी सभ्यता की सर्वोच्चता को स्वीकार नहीं किया जा रहा है अपितु समस्या यह है कि इसको पूरे तौर पर माना नहीं जा रहा है। जहां तक जानने की बात है तो यह स्पष्ट है कि हर धर्म के पढ़े–लिखे और बुद्धिजीवियों ने खुले दिल से स्वीकार किया है और ज़बान व क़लम से इसको प्रकट कर दिया है कि "इस्लामी शिक्षा जैसी शिक्षा नहीं" ज्ञान व वैचारिक रूप से दुनिया के सभी तथाकथित शोध करने वाले इस वास्तविकता को प्रकट करने में सहमत दिखाई देते हैं, यहां तक कि पश्चिमी दुनिया के इस्लाम विरोधियों ने शोध की अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं स्थापित की ताकि इस्लाम के विरुद्ध कोई तिनका हाथ आ जाए और वे उसे तीर बनाकर प्रस्तुत कर सकें, लेकिन यहां भी वह बात सामने आ गयी कि "शिकारी स्वयं यहां शिकार हो गया।"

एक दुखदायी वास्तविकता यह है कि जो जानते हैं वे मानने को तैयार नहीं और जो मानते हैं वे जानने की कोशिश करने को तैयार नहीं। इस प्रकार इस्लाम के "स्पष्ट व संतुलित" अस्तित्व को बेवकूफ़ दोस्तों और जानकार दुश्मनों ने सीमित और तंग कर डाला और इस्लाम की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापकता की राह में बड़ी–बड़ी रुकावटें खड़ी कर दीं। यद्यपिः

"फूंको से यह चिराग़ बुझाया न जाएगा"

चाहे इसके व्यापक प्रकाश को को देखकर जलन या ईर्ष्या के मारे कोई अपनी आंखे ही बन्द कर ले और अपने आप को अपने ही फैलाए हुए अंधेरे के हवाले कर दे।

अंधो, बहरों और गूंगों को जाने दीजिए, अपनी आबाई मिल्कियत के दावेदारों ने ख़ुद हर प्रकार से कौन से अत्याचार इस्लाम पर नहीं किए हैं। आस्था जैसी मूलभूत संपदा को खेल–तमाशा किसने बनाया? इबादत व इताअत का जनाज़ा धूमधाम से किसने निकाला? चरित्र व व्यवहार को धूल चटाने वाले कौन हैं? सामाजिकता और त्याग की धज्जियां बिखेरने वाले हम नहीं तो क्या कोई दूसरा है? इस्लाम के नाम और काम पर धब्बे हम लगा रहे हैं या दूसरे? इस्लाम की महान व पवित्र सभ्यता और पहचान को बिगाड़ने के गुनहगार हमारे सिवा और कौन हो सकते हैं?

इस्लाम अपनी आस्था, इबादत, व्यवहार, सामाजिकता, सभ्यता, जीवनयापन, हर विभाग में स्वयंभू है, स्वयंभू था और स्वयंभू रहेगा। यदि हमने इस्लामी सभ्यता को अज़ाब व दण्ड का साधन समझा था तो इस्लाम देने वाले ने दूसरों को इस ओर आकर्षित कर लिया है और पूरे गिरोह के गिराहे, सेना की सेना इस्लामी रहमत के साये में आ रहे हैं और इस्लाम पर गर्व कर रहे हैं। इस्लामी सलामती के साये में पनाह लेने वाले नवमुस्लिमों (मर्द व औरत) के इल्मी हालात और दिल की कैफ़ियत का अन्दाज़ा हम रिवायती मुसलमान सही तौर पर नहीं कर सकते हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे तो उम्मत के शरीर का "नया ख़ून" साबित हो जाएं और हम अपने बुरे कामों, बेहिसी और नाक़द्री की बुनियाद पर "ख़राब ख़ून" की श्रेणी में आ जाएं। यूं नेमते इस्लामी से हम मजरूहुल क़िसमत होकर दोनों जहां की नाकामी और ज़िल्लत के हक़दार हो जाएं। ...(शेष पेज 20 पर)

तातारी मुसलमान

समी उल्लाह मलिक

इतिहास के विभिन्न अध्यायों में शैतानी ताक़तों ने मुसलमानों पर बहुत अत्याचार किया है किन्तु मीडिया और इतिहास में यहूदियों को ही याद रखा जाता है। अत्याचारी को पीड़ित साबित करने की यह चाल हर दौर में जारी रही। काश अल्लाह के बन्दे मुसलमानों के हॉलोकास्ट को भी निन्दनीय समझें। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर न्याय की एक मूलभूत आवश्यकता है कि जिसे नज़रअन्दाज़ करने के परिणाम में उम्मत पर जो अन्याय किया गया वह दुनिया की नज़रों से ओझल ही रहेगा।

क्रीमिया द्वीपः मध्यकाल से लेकर मई 1944 ई0 तक क्रीमिया तातारियों का देश रहा है। क्रीमियाई मुसलमानों का संबंध तुर्की क़ौम के उस गिरोह से था जो तेरहवीं सदी में बातू ख़ान (Golden Horde) की सेना का नुमायां हिस्सा थे और फिर उन्होंने क्रीमिया को अपना देश बनाया। क्रीमियाई तातारी सुन्नी मुसलमान हैं और तुर्की ज़बान का एक लहजा "क़च्चाक़ तुर्क" बोलते हैं। पन्द्रहवीं सदी के मध्य में यहां के मुसलमान एक ज़बरदस्त ताक़त बनकर उभरे और 1428 ई0 में उन्होंने एक ऐसा साम्राज्य स्थापित किया जो ख़ानान–ए–क्रीमिया कहलाता है। उसे अंग्रेज़ी में "ख़ानियत क्रीमिया" (Crimean Khanatae) कहते हैं। क्योंकि इस्लामी शिक्षा उन तातारी मुसलमानों में अच्छी तरह बैठी नहीं थी इसलिए वे अपनी ताक़त का ग़लत इस्तेमाल भी करते थे। दास प्राप्ति के लिए पोलैंड पर हमला और उनको बेचना उनके इतिहास का एक काला अध्याय है। व्यापार के बदले गुलामों की वापसी के लिए रूस और पोलैंड के राज्यों से दंड भी वसूल किया जाता था यानि दासों का व्यापार और कर वसूली को आर्थिक श्रेणी में रखा गया था।

इस काम के बावजूद क्रीमियाई मुसलमानों की इस्लामी क्षेत्रों के लिए सबसे बड़ी सेवा यह है कि उन्होंने एक लम्बे अर्से तक मुस्लिम क्षेत्रों की ओर रूस और पोलैंड के बढ़ते क़दमों को रोके रखा और उत्तर की ओर से इस्लामी सीमाओं की पूरी सुरक्षा की। उनकी भरपूर ताक़त से उस क्षेत्र में ताक़त का संतुलन बना रहा। इस साम्राज्य का एक और कारनामा यह था कि उसने जगह के अनुसार से बहुत ही महत्वपूर्ण मृत्यु सागर (Dead Sea) में बहुत लम्बे समय तक रूसी असर व रसूख को बढ़ने न दिया और रूस और मृत्यु सागर के बीच एक बहुत बड़ी रुकावट बन गए।

दिलचस्प बात यह है कि तातारी उस्मानिया साम्राज्य के नेतृत्व में जाने के बावजूद क्रीमियाई तातारियों का राज्य लगान देने वालो में नहीं था। बाबा आली और ख़ानान के बीच संबंध बहुत अच्छे थे। चयनित सम्राट को कुस्तुनतुनिया से स्वीकृति तो लेनी पड़ती थी फिर भी वह उस्मानियों का तय किया हुआ नहीं होता था। ख़ानान को अपना सिक्का चलाने और जुमा के खुत्बे में अपना नाम सम्मिलित करने की आज्ञा थी जो उनके स्वयंभू होने की पहचान मानी जाती थी। उस्मानी युग ख़ानान क्रीमिया का नवां दौर था विशेषतयः सैन्य शक्ति के रूप में कोई ताक़त उनका सामना नहीं कर सकती थी। क्रीमिया की ताक़त का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि वे पांच लाख सैनिको की सेना मैदान पर उतारने की क्षमता रखते थे। निसंदेह यह राज्य अट्ठारहवीं सदी तक पूर्वी यूरोप की बड़ी ताक़तों में से एक था।

व्यापार को बढ़ाने के अवसर और सैन्य विशालता की इस इच्छा ने रूस को क्रीमिया पर क़ब्ज़े के लिए आकर्षक बना दिया था। इसीलिए सत्तरहवीं सदी के आख़िर में रूस ने यहां दो बार क़ब्ज़ा करने की इच्छा से प्रयास किया लेकिन असफल रहा। यद्यपि अट्ठारहवीं सदी के आरम्भ में कुछ अर्से के लिए उन्होंने एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह पर

क़ब्ज़ा भी कर लिया लेकिन वह अधिक समय तक बरक़रार न रह सका। 1771 ई0 में रूस ने क्रीमिया द्वीप में घुसपैठ की और उस्मानियों से एक संधि के तहत 1783 के दौरान यह क्षेत्र रूस के अधिकार में चला गया। 1783 ई0 में महारानी कैथरीन द्वितीय ने उस्मानियों से की गयी सभी संधियों को तोड़कर क्रीमिया को रूसी नियन्त्रण में दे दिया। क्रीमिया और मुलहक़ा क्षेत्रों पर रूसी नियन्त्रण के बाद वहां इस प्रकार के हालात पैदा किए गए कि मुसलमान खुद इलाक़े को छोड़ने पर मजबूर हो जाएं। इसके कारण आन्तिर से अधिक वाह्य थे। क्योंकि मृत्यु सागर में जल सेना को मज़बूत बनाना और विशेषतयः कुस्तुनतुनिया पर क़ब्ज़े के द्वारा अपने क्षेत्र को विशाल बनाने के इरादे को शक्ति देना रूस का पुराना सपना था अतः अपनी मंज़िल को पाने के लिए पहली रुकावट यानि क्रीमिया को हटाना आवश्यक था और यह रणनीति केवल ज़ार के युग में ही नहीं बनायी गयी बल्कि जब विश्वयुद्ध में विजय के पश्चात विशालता के इरादे को अधिक शक्ति मिली तो उस सपने को पूरा करने की एक बार भरपूर कोशिश की गयी और वास्तव में क्रीमियाई मुसलमानों को जबरन पलायन पर मजबूर करना उसी रणनीति का परिणाम था।

रूस के क़ब्ज़े के बाद तातारी मुसलमानों का पतन आरम्भ हुआ। इस क्रम में सबसे पहले काम खेती पर टैक्स में अत्यधिक बढ़ोत्तरी के द्वारा किया गया। जिसके बाद जबरन धर्म परिवर्तन के द्वारा मुसलमानों का पतन करने का प्रयास किया गया। जब दोनों रणनीतियां विफल रहीं तो अन्तिम रणनीति के रूप में दूरस्थ के लोगों यानि सलाफ़ी नस्ल के इसाईयों को आबाद करना आरम्भ किया गया और इस पर यह कि स्थानीय ज़मीन उन नये आबाद होने वालों को दे दी गयीं। तातारियों की ज़मीनों पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। हज़ारों विरोधियों को मार दिया गया। केवल छः सालों के भीतर तातारी मुस्लिम क्षेत्रों से पलायन पर मजबूर हो गये। इस चौतरफ़ा अत्याचार के परिणाम में मुसलमानों की बड़ी संख्यां अपने धर्मवालों और नस्लवालों यानि उस्मानी क्षेत्रों की ओर पलायन कर गयी जो आर्थिक रूप से उनके लिए लाभदायक तो थी लेकिन इस जबरन पलायन का परिणाम यह हुआ कि कुछ ही समय में क्रीमिया मुस्लिमों अल्पसंख्यकों का क्षेत्र बन गया और केवल छः सालों के भीतर तीन लाख मुसलमानों को उस्मानी क्षेत्रों की ओर पलायन करना पड़ा। इस पलायन के परिणाम में क्रीमिया और दूसरे सभी क्षेत्र जहां अट्ठारहवीं सदी तक मुसलमानों का शासन था वहां ज़ार का वर्चस्व हो गया और मुसलमान अल्पसंख्यक हो गए। शेष आबादी जो रह गयी थी द्वितीय विश्व युद्ध मे जोसेफ़ स्टालिन के समय पूर्ण रूप से क्रीमिया से बेदख़ल कर दी गयी। इस मुस्लिम आबादी को किसी भी प्रकार से ग़रनाता के पतन से कम क़रार नहीं दिया जा सकता है। हां यद्यपि दोनों घटनाओं में अन्तर यह है कि क्रीमिया के तातारी मुसलमानों के बारे में हम बहुत कम जानते हैं।

सूरगोन ("पलायन" बज़बान क्रीमियाई तातारी और तुर्की) 1944 ई0 में क्रीमिया के तातारियों की वर्तमान उज्बेकिस्तान की ओर पलायन और क़त्ल–ए–आम को कहा जाता है। सोवियत यूनियन में जोसेफ़ स्टालिन के युग में 17 मई 1944 ई0 को सभी क्रीमियाई नागरिकों को उस समय की उज्बेक सोवियत पूंजीवादी गणतन्त्र में जबरन विस्थापित करा दिया गया था। स्टालिन के युग में देश के ख़िलाफ़ खुली हुई ग़द्दारी की सज़ा सामूहिक रूप से पूरी क़ौमों को देने का चलन अपनाया गया जिसका निशाना क्रीमिया के तातारी नागरिक भी बने जिन पर आरोप था कि उन्होंने नाज़ी जर्मनियों का साथ देकर उसके ख़िलाफ़ ग़द्दारी का सुबूत दिया। इस जबरन विस्थापन में रूस की खुफ़िया संस्था "एन के वी डी" के बावन हज़ार कार्यकर्ताओं ने भाग लिया और एक लाख 93 हज़ार 865 क्रीमियाई तातारी नागरिकों को उज़्बेक व क़ाज़िक और दूसरे क्षेत्रों में जबरन विस्थापित किया। इस जबरन पलायन के दौरान मई से नवम्बर के महीने तक 10 हज़ार 501 तातारी भूख और मौसम की सख़्ती से मारे गए जो उज़्बेक़ क्षेत्र की ओर विस्थापित किए गए, जो कुल नागरिकों का सात प्रतिशत है। खुफ़िया पुलिस के आंकड़ों के अनुसार एक साल के अन्दर तीस हज़ार तातारी (कुल पलायनकर्ताओं का बीस प्रतिशत) अपनी जान से हाथ धो बैठे जबकि क्रीमियाई तातारियों के आंकड़े बताते हैं कि यह संख्यां 46 प्रतिशत थी।

स्टालिन के दौर में सज़ा के तौर पर जबरन परिश्रम

की व्यवस्था "गो लाग" (G o l a g) बनायी गयी थी। सोवियत दस्तावेज़ साबित करते हैं कि कई क्रीमियाई नागरिकों को इस व्यवस्था के तहत जबरन परिश्रम पर लगाया गया। जबरन परिश्रम की इसी व्यवस्था के तहत क्रीमिया के तातारी और दूसरे कई समुदायों के नागरिकों को साइबेरिया भी भेजा गया। क्रीमिया के तातारियों की मांग है कि "सोर गोन" को व्यवस्थित क़त्लेआम घोषित किया जाए। क्रीमिया के तातारियों का जबरन देश निकाले की कहानी जो सदियों पर आधारित है, 1944 इस जबरन निकाले का क्रम है। यह क्रम 1938 ई0 से आरम्भ हुआ। जब रुस ने क्रीमिया पर क़ब्ज़ा किया उस खुलेआम हत्या व जबरन देश निकाले पर पर्दा डाला जाता रहा मगर वर्तमान युग विशेषतयः 1944 ई0 और उसके बाद के अत्याचार सामने आ गए। ब्राइन ग्लेन विलियम्ज़ के अनुसार रूसी साम्राज्य के अत्याचार से तातारी अपने ही देश में नापेद होने लगे। तातारियों ने दो प्रकार से हिजरत की, एक पलायन क्रीमिया से उन क्षेत्रों की ओर जो उस समय उस्मानिया साम्राज्य का हिस्सा थे, दूसरी पिछली सदी में रूस के बाक़ी साम्राज्य की ओर यहां तक कि तातारियों को जबरन रूस के दूसरे क्षेत्रों में भेजा गया जिनमें अधिकांश को जबरन शारीरिक परिश्रम हेतु साइबेरिया ले जाया गया। दूसरा ग़ैर क्रीमियाई लोगों को भारी संख्या में क्रीमिया में बसाया गया जिसके लिए कई तरीक़े इस्तेमाल किए गए। क्रीमिया से निकाले गए सभी लोग मुसलमान थे और बसाए जाने वाले सभी लोग ग़ैर मुस्लिम थे। इस भूमिका का उद्देश्य मुसलमानों के इस वर्ग की ओर ध्यान दिलाना है जिससे हमारे 98 प्रतिशत मुसलमान अपरिचित हैं।

देश भर में राष्ट्रद्रोह के आरोप में जिन लोगों को मौत का सामना करना पड़ा उनमें सबसे महत्वपूर्ण 20 लाख रूसी मुसलमानों का क़त्ल–ए–आम है जिनमें चेचन्या, अंगुश, क्रीमियाई तातारी, ताजुक, बाश्कर, और फ़ाज़क़ शामिल हैं। आज चेचन्या में आज़ादी की जंग लड़ने वाले जांनिसार सोवियत क़ैदख़ानो से बचने वाले लोग उन्हीं की औलाद हैं। स्टालिन के दौर में अपनी ही जनता पर थोपी गयी इस जंग में ख़ुफ़िया पुलिस के जत्थे को क्रीमियाई मुसलमानों के ख़ात्मे का आदेश दिया गया और स्टालिन द्वारा तय किया गया जल्लाद लाज़ार कागानोच ने प्रति सप्ताह 10 हज़ार व्यक्तियों की हत्या का बेड़ा उठा रखा था। इस भयावह हत्याकांड में यूक्रेन से संबंध रखने वाले अस्सी प्रतिशत बुद्धिजीवियों की हत्या की गयी। 1923 ई0 और 1933 ई0 की सख़्त सर्दियों में यूक्रेन में प्रतिदिन 25 हज़ार लोग रूसी फ़ौज की गोलियों या भूख या सर्दी से मौत का निशाना बने। लेखक राबर्ट कुविस्ट के अनुसार यूक्रेन एक बड़े बूचड़खाने की भांति था।

मशहूर पत्रकार ऐरक मारगोलिस ने 1988 ई0 में यूक्रेन की उन ही अक़वाम गुम गश्ता पर क़लम उठाया। The Forgotten Genocide में मारगोलिस कहते हैं कि पूरे रूस में सत्तर लाख लोगों के इस भयावह हत्याकांड में 20 लाख लोगों के पलायन को सोवियत प्रोपगन्डे के पर्दे के पीछे छिपा दिया गया उनमें तीस लाख मुसलमान थे, जिनमें 15 लाख क्रीमियाई और फ़ाज़िक़ थे। इस भयानक हत्याकांड पर भी उन लोगों की याद में किसी प्रकार के हॉलोकास्ट की स्थापना नहीं की गयी।

मारगोल्स पश्चिमी वामपंथी बुद्धिजीवियों का भी रोना रोते हैं कि उन्होंने रूसियों के हाथों इस हत्याकांड को स्वीकार नहीं किया बल्कि उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वालों को फ़ासिस्ट एजेन्ट कहा। अमरीका, इंग्लैण्ड और कनाडा की सरकारों ने जानकारी होने के बावजूद अपनी आंखे बन्द कर रखीं थीं। यहां तक कि सहयोगी दलों को भी यूक्रेन जाने से रोका गया। वे कहते हैं कि जब दूसरे विश्वयुद्ध का आरम्भ हुआ और अमरीकी राष्ट्रपति रोज़वेल्ट इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री चर्चिल ने स्टालिन से निकटतांए बढ़ाईं। इस बात की जानकारी होने के बावजूद कि उसके हाथ कम से कम तीस लाख लोगों के ख़ून से रंगे हुए हैं और यह घटना उस समय की है जब हिटलर ने यहूदियों की हत्या का क्रम आरम्भ भी न किया था। तो फिर हैरत होती है कि यहूदियों के हत्याकांड का इतना वावेला क्यों किया गया। स्टालिन ने हिटलर से तीन गुना अधिक लोगों का क़त्ल किया और इंग्लैण्ड का अमरीका व रूस के साथ गठजोड़ करना वास्तव में हत्याकांड के बराबर था लेकिन जर्मन को आरोपी ठहराकर उसका बदला मुसलमानों से क्यों वसूला गया?

इस्लामी चरित्र व व्यवहार की विशेषताएं

मौलाना शमसुल हक़ नदवी

मुस्लिम समुदाय इस समय तरह–तरह की समस्याओं एवं ख़तरों से घिरा हुआ है। हर स्तर और हर मोड़ पर उसको कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और यह कोई नयी बात नहीं है। इस्लामी इतिहास में बार–बार ऐसे हालात आते रहे हैं। वे जिनको रोशनी से बैर है और वे आरम्भ से इस्लाम के विरुद्ध लगातार साज़िशें करते रहे हैं, ऐसी कि कुरआन ने उनकी मक्कारी व साज़िश को इन शब्दों में वर्णित किया: "मानो उनके उपाय ऐसे ग़ज़ब के थे कि उनसे पहाड़ भी टल जाएं" जब कुरआन मजीद इन साज़िशों की हक़ीक़त को इस प्रकार बयान करे तो क्या कहा जा सकता है। कभी–कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगा है कि शायद अब इस्लाम का चिराग़ बुझ जाएगा, लेकिन चूंकि इस समुदाय का अस्तित्व क़यामत तक के लिए बरपा किया गया है अतः इसकी नैया तूफ़ानी मौजों में घिर–घिर कर किनारे को लगती रही है। हर नाज़ुक घड़ी में कुछ ऐसे व्यक्तित्व सामने आते रहे हैं जिन्होंने अपने विवके, चरित्र, धैर्य और जोश के बजाए होश से काम लेकर इस समुदाय के 'ख़ैर का समुदाय' होने की लाज रखी है और बिगड़े, फिरे हुए लोगों को न केवल ठण्डा किया बल्कि उनको अपने चरित्र व व्यवहार से जो अल्लाह के प्रमाण का कार्य करता है अपना बंदी बना लिया।

यदि थोड़े सोच–विचार से काम लिया जाए तो पता चलेगा कि एक मुसलमान अपनी ऐच्छिक एवं स्वाभाविक आवश्यकताओं के अनुसार तो साधारण मनुष्य की भांति है। उन सभी हालात से उसका भी सामना होता है जिनसे दूसरे मनुष्यों को गुज़रना पड़ता है, अर्थात यह कि वह अपने मानवीय अस्तित्व में प्राकृतिक नियमों का वैसा ही अधीन है, जैसा कि उसके समान और दूसरे मनुष्य! ज़माने का इन्क़िलाब और रोज़गार हेतु प्रमाण उसे किसी प्रकार की छूट नहीं दे सकते, केवल इसलिए कि उसका कोई विशेष नाम है और उसका संबंध विशेष नस्ल से है, बहरहाल मोमिन बन्दे को इनसान होने की हैसियत से उन सभी स्वाभाविक कठिनाइयों से गुज़रना पड़ेगा, जिससे दूसरे मनुष्य गुज़रते हैं।

लेकिन मोमिन बन्दा दूसरे मनुष्यों से इस प्रकार से बहुत श्रेष्ठ है कि जब वह उन समस्याओं और परेशानियों पर धैर्य से काम लेता है और उसको अपने मालिक की ओर से समझता है जो उसकी खुली या छिपी तत्वदर्शिता के कारण आ रहा है, तो उसपर उसको न केवल यह कि अगली दुनिया का अज्र व सवाब मिलता है, बल्कि इस दुनिया में भी उसको दिली सुकून व इत्मिनान प्राप्त होता है। जिसको कुरआन मजीद में इस प्रकार बयान किया गया है:

"अगर तुम बेआराम होते तो जिस तरह तुम बेआराम होते हो तो उसी तरह वे भी बेआराम होते हैं, और तुम ख़ुदा से ऐसी–ऐसी उम्मीदें रखते हो जो वे नहीं रखते।" और "और सुन रखो ख़ुदा की याद से दिल आराम पाते हैं।"

यह ज़िक्र केवल मोमिन बन्दे को ही प्राप्त होता है। इससे मालूम हुआ कि मुसलमान दो हैसियतों से बटा हुआ है। उसकी एक हैसियत तो इनसानी वजूद की है और दूसरी हैसियत ईमानी वजूद की है।

इस दूसरी हैसियत यानि ईमानी वजूद से वह अपने अन्दर एक संदेश रखता है जो नबियों (संदेष्टाओं) का संदेश है। मोमिन बन्दे का यह ईमानी वजूद उसे इस दुनिया के सभी मनुष्यों से श्रेष्ठ कर देता है। एक मुस्लिम की ख़ालिस तौहीद (विशुद्ध एकेश्वरवाद) उसे बन्द–ए–इनसान व बन्द–ए–माल व ज़र होने से अलग कर देती है। उसकी व्यापकता व मानवता, वतनपरस्ती और रंग व नस्ल के भेदभाव की जड़ काट देती है। वह जीवन का एक संदेश रखता है, उसके जीवन का

उद्देश्य यही संदेश होता है, उसी की ख़ातिर जीता है और उसी की ख़ातिर मरता है। जीवन के मूल्य चाहे जितने ही बदल जाएं और मनुष्य के जीवन में चाहे कितनी बड़ी क्रान्ति क्यों न आ जाए, लेकिन उसके अन्दर न कोई बदलाव होता है और न वह स्वयं अपनेआप को बदलता है। उसका उदाहरण ऐसे वृक्ष की भांति है जिसकी जड़े जमी हुई होती हैं और शाखें आसमानों को छू रही हों।

मोमिन बन्दे की श्रेष्ठता की यही शान है जो उसके अन्दर मानवता का दर्द और प्यार व मुहब्बत की ज्योति जगाती है और उसको मानवता के निर्माण की चिन्ता में बेचैन रखती है। पूरी दुनिया की क़ौमों में केवल इस उम्मत को यह ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है कि वह सृष्टि की जांच–पड़ताल का कर्तव्य निभाए, गिरतों को उठाए, बिगड़ों को सुधारे, उनके अपवित्र स्वभाव को पवित्र स्वभाव में बदलने का प्रयास करे, वह हालात व ज़माने के रुख़ पर न चले, बल्कि मानवता के क़ाफ़िले को उस रुख़ पर चलाने के लिए प्रयासरत् रहे जिसमें उसके सुधार व भलाई का राज़ छिपा हुआ है। और यह उसी समय संभव है जब वह स्वयं को इस सांचे में ढाल ले जिसमें उसका पहला क़ाफ़िला ढला हुआ था। जो मुहम्मद स0अ0 के प्रशिक्षण का प्रतिविम्ब था और जिसके चरित्र व व्यवहार ने देशों को जीतने से पहले दिलों को जीत लिया था। इस समय पूरी दुनिया जिस बेचैनी के दौर से गुज़र रही है और वह अंधकार में ऐसे भटक रही है जिसमें हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता। अर्थात अंधेरे में अंधेरे हों, एक पर एक छाया हो जब अपना हाथ निकाले तो कुछ न देख सके।

दुनिया ने इस समय ज्ञान व शिल्प में उन्नति का जो रिकार्ड स्थापित किया है उसका कभी ख़्याल भी नहीं किया जा सकता था बल्कि आने वाली दुनिया की राहत व आराम का जब वर्णन होता और वही व रसूलुल्लाह स0अ0 की ज़बान से इसकी ख़ुशख़बरी दी जाती थी तो उसका मज़ाक़ उड़ाया जाता था। सोचने की बात है कि जब मनुष्य उन्नति करके यहां तक पहुंच सकता है तो उस ख़ालिक़ का वादा कैसे ग़लत हो सकता है। किन्तु उन सारी उन्नतियों में चूंकि वह तत्व शामिल नहीं है इसलिए वे सारी उन्नतियां जो मनुष्य को राहत पहुंचाने के लिए थीं उसके लिए लाइलाज बीमारी बनी हुई थीं। सबकुछ है लेकिन सुकून चैन नहीं है। इनसान ख़ुद अपने जैसे इनसानों का शिकार बना हुआ है। कुछ नेक आत्माएं जब सुकून की तलाश में बेचैन फिरती हैं तो उनको उन शिक्षाओं में सुकून मिलता है जो उनके रब ने उनके लिए अपने कलाम पाक में अपने नबी के द्वारा उतारी हैं और नबी स0अ0 ने उसी प्रकार उनको बरत कर और अमल करके दिखाया है। वे नेक रूहें जब हर ओर से आस तोड़कर उनको पढ़ती हैं और उसका अध्ययन करती हैं तो उनको यहीं चैन नज़र आता है और अपने को उन्हीं शिक्षाओं के हवाले कर देती हैं यानि इस्लाम कुबूल कर लेती हैं।

अब यदि हम मुसलमान उन इस्लामी शिक्षाओं का अपने चरित्र व व्यवहार में प्रदर्शन करें तो फिर किस तेज़ी के साथ भूली–भटकी रूहें उसकी ओर बढ़ेंगी, इसका अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता है। इसलिए यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम उन शिक्षाओं का अमली नमूना पेश करें, जिसको किसी एक मर्दे मोमिन ने पेश किया है तो हज़ारों लाखों इनसानों ने अंधेरों से निकल कर उस रोशनी में पनाह ली।

हालात व वाक़्यात बताते हैं कि इनसानियत अभी बिल्कुल मुर्दा नहीं हुई है। कुछ शुभचिन्तक व सम्मानित लोग मानवता की सदाएं लगाएं तो रेगिस्तान में लगायी गयी आवाज़ साबित नहीं होगी। पश्चिमी सभ्यता व मीडिया की लज्जारहित, मानवतारहित सभ्यता के प्रचार ने स्वार्थ व नफापरस्ती को इस हद तक पहुंचा दिया है जिसने सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था को ग़लत शब्द की तरह मिटा दिया है। फिर सुकून व चैन मिले तो कहां! इसीलिए बेचैन रूहें सुकून की तलाश में इस्लाम के सायादार पेड़ की ओर बढ़ रही हैं। जिसकी चर्चा मीडिया में कम होती है, अतः उन सारी साज़िशों और इस्लाम के दुश्मनी की योजनाओं के बावजूद मायूसी का शिकार नहीं होना चाहिए।

कामयाबी व सफलता ख़ुदा के हाथ में है और उसका तरीक़ा यही है कि मुख़लिस बन्दों की मदद करता है।

माता–पिता के अधिकार

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हदीसः हज़रत अबूहुरैरा रज़ि0 की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल स0अ0 ने कहाः "उसकी नाक मिट्टी में मिले, उसकी नाक मिट्टी में मिले, उसकी नाक मिट्टी में मिले, पता लगाया गयाः ऐ अल्लाह के रसूल! किसकी नाक मिट्टी में मिले? फ़रमायाः जिसने अपने माता–पिता में से एक या दोनों को बुढ़ापे की हालत में पाया और फिर भी जन्नत में दाख़िल न हो सका।"

फ़ायदाः रिश्तों के अध्याय में सबसे मज़बूत और अटूट रिश्ता औलाद का अपने माता–पिता से होता है। यह रिश्ता प्रेम, लगाव, कृपा से परिपूर्ण होता है। हर मनुष्य का आरिम्भ लालन–पालन, शिक्षा व प्रशिक्षण व उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने में उसके माता–पिता सर्वश्रेष्ठ स्थान पर होते हैं। बचपन के उन दिनों में जब बच्चा अपरिपक्व होता है, क़दम–क़दम पर यही माता–पिता उसकी देखभाल करते हैं। उसके आराम के लिए अपनी नींद कुर्बान कर देते हैं। उसकी तकलीफ़ दूर करने के लिए हर तकलीफ़ सहने को तैयार हो जाते हैं।

यही कारण है कि इस्लाम ने इस रिश्ते को पवित्र रिश्ता बताया है। अल्लाह की इबादत के साथ माता–पिता की सेवा और उनके साथ अच्छे व्यवहार का आदेश दिया गया हैः "और आपके रब का यह फ़ैसला है कि तुम सब ज़रूर उसकी बन्दगी करो और मां–बाप के साथ अच्छा बर्ताव (करो) अगर तुम्हारे पास दोनों में से कोई एक या दोनों बुढ़ापे को पहुंच जांए तो उनको उफ़ भी मत करना और न ही उनको झिड़कना और उन दोनों से इज़्ज़त के साथ बात करना और उन दोनों के सामने पूरी तरह रहमत बनकर नर्मी के साथ झुके रहना और दुआ करते रहना कि ऐ मेरे रब उन दोनों पर रहम फ़रमा जैसा उन्होंने बचपन में हमें पाला।"

यह माता–पिता के श्रेष्ठ होने की बात है कि उनकी अवज्ञा करना हदीस में बड़े गुनाहों में शामिल किया गया है। बुढ़ापे की हालत में पाने के बावजूद उनकी सेवा न करने वाले को बहुत सुस्त कहा गया है और जन्नत से हाथ धो बैठने के बराबर क़रार दिया गया है। यदि किसी के माता–पिता कुफ़्र व शिर्क में पड़े हों, उनके साथ भी अच्छे व्यवहार करने के लिए कहा गया है यहां तक कि पिता के साथियों के साथ अच्छे व्यवहार को सबसे श्रेष्ठ सिलारहमी कहा गया है।

इन सभी शिक्षाओं के बावजूद आज अफ़सोस की बात है कि बहुत से दीनदार लोग भी माता–पिता के अधिकारों को अदा करने में पीछे हैं। वे भी पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर अपने माता–पिता के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं, जिसकी आज्ञा शरीअत ने दी ही नहीं है। इस्लामी शरीअत का आदेश तो यह है कि मनुष्य माता–पिता के आधिकारों को अदा करने में न केवल अच्छा बर्ताव करे, बल्कि उनकी किसी ऐसी बात पर जो उसे अच्छी न लगे, ''उंह'' भी न करे। लेकिन आज ऐसी घटनाएं अधिकता से अख़बारों की सुर्ख़ियों में होती हैं माल व जाएदाद के लिए, बीवी की बात मानने पर बहुत से मुसलमान अपने माता–पिता के साथ अच्छा बर्ताव करते हैं। जो इस्लामी शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत है। मानवता की मांग तो यह है कि हर व्यक्ति इस दुनिया में जिनके द्वारा वजूद में आया, जिनके द्वारा बोलना, चलना–फिरना सीखा, उनके अधिकारों को अदा करने में कोई कमी न करे, उनकी सेवा माल व जाएदाद के लिए न करे, बल्कि केवल अल्लाह की रज़ा पाने के लिए करे, उनकी हर उस बात को मानना अपना कर्तव्य समझे, जिसमें अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा की संभावना न हो। चाहे इसके लिए दूसरे लोग उसका सहयोग करें या नहीं। किन्तु हर व्यक्ति का अपना कर्तव्यत यह है कि वह माता पिता के अधिकारों को अदा करने में हर संभव प्रयास करे।

इस्राईली पॉलिसी

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

बीसवीं सदी के आरम्भ में जब यहूदियों की आर्थिक स्थिति सदृढ़ हुई, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उनका प्रभाव बढ़ने लगा या दूसरे शब्दों में अपनी मक्कारी व झूठ से उन्होंने अपने अस्तित्व को स्वीकार करा लिया और यूरोपीय समुदाय की कुछ सुहानुभूति प्राप्त कर ली तो उनके अन्दर बहुत तेज़ी से यह भावना पैदा हुई कि इस दुनिया के नक़्शे में उनका अपना एक अस्तित्व होना आवश्यक है और फिर उनकी निगाह फ़िलिस्तीनी धरती पर पड़ी जिसे इतिहास व भूगोल के अध्याय में किसी भी प्रकार से उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यूरोपीय क़ौमों ने भी मौक़े को ग़नीमत समझा और यहूदियों से छुटकारा पाने के लिए उनका भरपूर साथ दिया और फिर 14 मई 1948 ई0 को यहूदी साज़िशों का क्रियान्वयन हुआ और मुसलमानों के हृदय में नाजायज़ सहयूनी (पवदपेज) राज्य "इस्राईली साम्राज्य" की स्थापना की घोषणा कर दी गयी और फ़िलिस्तीन का लगभग 55 प्रतिशत हिस्सा "यहूदियों के कुदरती व ऐतिहासिक अधिकार" के नाम से इस्राईल को दे दिया गया।

यहूदियों का मूलभूत उद्देश्य एक महान साम्राज्य की स्थापना है जिसके लिए उन्होंने दो तरह की पॉलिसियाँ अपनायी हैं। एक दुनियाभर के यहूदियों को इस्राईल में आबाद करने की, जिसमें अमरीका व इंग्लैण्ड ने यहूदियों की खुफिया संस्था "ज्यूश एजेंसी" का भरपूर सहयोग किया। दूसरा निहत्थे फ़िलिस्तीनियों पर हर प्रकार के अत्याचार को जारी रखना जिसमें उन्होंने ख़तरनाक रसायनिक हथियार भी प्रयोग भी सम्मिलित है।

यहूदियों को बसाने के लिए इस्राईल ने हर संभव प्रयास किये। सैंकड़ो योजनाएं तैयार की और भारी संख्या में बस्तियां बसायीं, जिससे इस्राईली साम्राज्य की सीमांए आए दिन फैलती जा रही हैं। अतः जब इस्राईल एक राज्य की हैसियत से दुनिया के नक़्शे पर उभर कर सामने आया, उस समय उसका कुल क्षेत्रफल पांच हज़ार वर्ग मील था और यहूदियों की आबाद लगभग पांच लाख थी। जबकि वर्तमान में इस्राईल का क्षेत्रफल चौंतिस हज़ार वर्ग मील से भी अधिक फैल चुका है और उसकी आबादी साठ लाख से भी अधिक हो चुकी है।

1967 ई0 में सयुंक्त राष्ट्र ने दो प्रस्तावों के द्वारा इस्राईल को अपनी पुरानी सीमाओं में लौट जाने का आदेश दिया था किन्तु उस पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी। इस्राईल ने संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव को ठुकराते हुए इस्राईली बस्तियों के निर्माण का क्रम उसी प्रकार जारी रखा, अतः अधीकृत बैतुल मक़दस (येरूशलम) के क्षेत्र में 26 बस्तियों में लाखों यहूदी बसाए गए। अलबरीह और रमल्ला के क्षेत्र में 24 रिहायशी योजनाओं में हज़ारों यहूदी आबाद हुए। मस्जिद–ए–अक़्सा से लगभग 150 किलोमीटर के फ़ासले पर "मआलिया अज़यतीम" नामक एक कॉलोनी बनायी गयी है जिसमें 132 आवासीय अपार्टमेंट हैं। पश्चिमी सहयोग और संयुक्त राष्ट्र की दोहरी पॉलिसी ने इस्राईल को अपनी सीमाएं बढ़ाने की पॉलिसियां जारी रखने में और अधिक ढीठ बना दिया है।

इस्राईल ने अपने साम्राज्य को मज़बूत करने और बढ़ाने के लिए फ़िलिस्तीनियों पर हर प्रकार के अत्याचार किये। उनके क्षेत्रों में जगह–जगह चौकियां बनाईं, रास्तों की नाकाबन्दी कर दी गयी, घर–घर में तलाशी अभियान शुरू हुआ, इज़्ज़तों को लूटा गया और उन्हें बेघर करके कैम्पों में रहने पर मजबूर किया गया, और फिर जब चाहा उन कैम्पों को क़ब्रिस्तान बना दिया जिसकी एक खुली हुई मिसाल "जियन कैम्प" भी है।

इस्राईली शासन का रवैया फ़िलिस्तीनी नागरिकों के साथ हमेशा अत्याचार व बर्बरता का रहा है। इस्राईली जेलों में हज़ारों मर्द–औरतें और बच्चे तकलीफ़ का शिकार हैं। उन पर बहुत ही ख़तरनाक रसायनिक दवाएं आज़माई जा रही हैं, घरों पर बुल्डोज़र चलाए जा रहे हैं, उन्हें ज़िन्दा जलाया जा रहा है, फ़िलिस्तीनियों पर अत्याचार के जो पहाड़ तोड़े जा रहे हैं उसका उदाहरण उस इतिहास में भी नहीं मिलता, जब दुनिया हर प्रकार की मानवता से कोसों

दूर हैवानियत की सतह पर थी। आज फ़िलिस्तीन में उन मासूमों के ख़िलाफ़ हर प्रकार के अत्याचारपूर्ण मानवता रहित क़दम उठाए जा रहे हैं। इन क़दमों ने जहां एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी के ज़मीर को झिंझोड़ कर रख दिया है वहीं सयुंक्त राष्ट्र संघ व पश्चिमी देशों ने न केवल ख़ामोशी अपना ली बल्कि पीठ पीछे उसके समर्थन का सिलसिला भी जारी है। लेकिन सवालिया निशान तो उस शासनों, संस्थाओं और जमाअतों पर है जिनका अस्तित्व इस्लाम के नाम पर है और उन्होंने फ़िलिस्तीनियों से अपनी आंखें मूंद ली हैं। कुछ दिनों की इस ज़िन्दगी के बाद जब हिसाब–किताब का दिन आएगा तब हर कोई अपने कामों का बदला ज़रूर पाएगा।

इतिहास गवाह है कि हमेशा का पतन किसी क़ौम का भाग्य नहीं। आज नहीं तो कल फिलिस्तीन के मुसलमान दोबारा उभरेंगे और ख़ुदाई निज़ाम (आकाशीय व्यवस्था) लागू करेंगे।

शेष : इस्लाम से दूरी क्यों?!

क्या मुस्लिम उम्मत की अस्सी प्रतिशत संख्यां दीन व इस्लामी सभ्यता से अनभिज्ञ व ग़ाफ़िल होकर जीवन नहीं व्यतीत कर रही है?उम्मत का महान वर्ग ज़बान से पक्का मुसलमान है और काम से...... जुमा के दिन ख़ुत्बा ख़त्म होते–होते मस्जिद का मुंह देखता है और इमाम के साथ सलाम फेरते ही मस्जिद से बाहर हो जाता है। जैसे उसको मस्जिद में घसीट कर लाया गया था। हमारी दीनदारी की ख़राब हालत यह सुबूत दे रही है कि अब इस्लाम पर आना हो चुका है, वह हमारे स्तर व भावनाओं का रक्षक नहीं रहा, अब एक नये इस्लाम की सख़्त ज़रूरत है या फिर ज़रूरत ही नहीं है। मुस्लिम उम्मत का 90 प्रतिशत से अधिक वर्ग पश्चिमी सभ्यता का केवल दिलदादा नहीं बल्कि गर्व के साथ उसका अनुयायी है। सरों पर अपने नबी स0अ0 की तरह अमामा तो दूर की बात टोपी इत्यादि भी भारी बोझ या असभ्य समझी जा रही है। चेहरे पर नूरानी दाढ़ी से नफ़रत और चिढ़ हो गयी है। लिबास यहूदियों व ईसाईयों का ही पसंदीदा व श्रेष्ठ मानकर उसी पर मर मिट रहे हैं। शरीफ़ाना और अधिक से अधिक सतर पोशी करने वाला लिबास स्तर से गिरा हुआ दक़ियानूसियत समझा जा रहा है। बोल–चाल और उठना–बैठना, बात–चीत में थोड़ा ग़ौर करें तो पता चलेगा कि मुसलमानों को इस्लाम के तरीक़ों से ज़्यादा दूसरों के तरीक़ों से मुहब्बत है। समाज पर यूरोपीय अन्दाज़ पर निर्मित है। खाने–खिलाने, कमाने ख़र्च करने और लेन–देन में इस्लामी शिक्षाओं का कोई हाथ नहीं। बेजा ख़र्च और रस्मों का चलन, मक़तल की ओल ले जाए जाना साबित हो रहा है। जितनी कोशिशें दीन के इल्म के प्रचार व प्रसार की और सुधार की हो रही हैं उतनी ही जिहालत व फ़साद की हरकतें हो रही हैं। क्या ज़मीन पर हर तरफ़ रुस्वाई व पीड़ित होने के बावजूद हम पूरी तरह से इस्लाम को सीने से नहीं लगाएंगे।

ईसाल–ए–सवाब का सुन्नत तरीक़ा

ईसाल–ए–सवाब एक तरह की दुआ है, आदमी जिस तरह जनाज़े की नमाज़ में मरने वाले के लिये दुआ करता है, इस्तिग़फ़ार का इहतिमाम करता है, और अल्लाह तआला की रहमत से उनकी क़ुबूलियत की उम्मीद करता है, इसी तरह जब वो कोई नेक काम करने की चाहे वो काम पैसे से हो (जैसे ग़रीब को खाना खिलाना, या कपड़े नक़्दी वग़ैरह देना या मस्जिद और दीनी मदरसों की तामीर में हिस्सा लेना) या वो काम बदन की इबादतों से संबंधित हो (जैसे क़ुरआन की तिलावत करना, नफ़िल रोज़े रखना, तस्बीह और कलिमा तैय्यब वग़ैरह पढ़ना) और अल्लाह तआला से दुआ करे कि या अल्लाह उन नेक कामों को जो कुछ सवाब मुझे मिला है वो सवाब फ़ंला व्यक्ति को पहुंचा दे, तो अल्लाह की रहमत से उम्मीद है कि अल्लाह इस दुआ को क़ुबूल कर लेगा।

ईसाल–ए–सवाब की हक़ीक़त सिर्फ़ इतनी ही है, बक़िया जो अलग–अलग रस्में और सूरतें ईसाल–ए–सवाब की राएज हो गयीं हैं सब बेबुनियाद है, सबसे बचना चाहिये।

इसलिये शरीअत से न कोई ख़ास समय या दिन तय है न कोई ख़ास जगह या ख़ास इबादत, न ये ज़रूरी है कि इसलिये आदमी एकत्र हों, या खाना मिठाई वग़ैरह सामने रखा जाए, और उस पर दम किया जाए, या किसी आलिमे दीन या हाफ़िज़ क़ारी को ज़रूर बुलाया जाए, न ये ज़रूरी है कि पूरा क़ुरआन ख़त्म किया जाए, या कोई ख़ास सूरह या दुआ ख़ास संख्या मे पढ़ी जाए।

लोगों ने अपनी तरफ़ से ईजाद करके ये रस्में और पाबन्दियां बढ़ा ली हैं, वरना शरीअत ने ईसाल–ए–सवाब को इतना आसान बनाया है कि जो व्यक्ति जिस दिन चाहे कोई भी नफ़िल इबादत करके इसका सवाब मरने वाले को पहुंचा सकता है।

इस्लामी इतिहास का एक भूला हुआ अध्याय

"हमारी सभ्यता वह एकलौती सभ्यता है जिसके पूर्वजों ने युद्ध के कठिन समय में भी न्याय की श्रेष्ठता व कृपालु मानवता का प्रदर्शन किया है। विशेष रूप से ऐसे अवसर पर जब परिस्थितियां मनुष्य को खून ख़राबे, अत्याचार और बदले हेतु प्रेरित करती हैं। ख़ुदा गवाह है कि मुसलमानों के यह युद्ध के समय के व्यवहार यदि अकाट्य ऐतिहासिक घटनाओं से प्रमाणित न होते तो मैं उन सभी घटनाओं को एक अफ़साना समझता जिसकी कोई वास्तविकता इस धरती पर नहीं हुआ करती।

जब हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ रज़ि० ख़लीफ़ा के पद पर बैठे तो समरक़न्द के लोगों का प्रतिनिधि मण्डल उनके पास यह शिकायत लेकर आया कि वहां की इस्लामी सेना के सेनापति क़ैतेबा ने बिना किसी कारण उनका शहर लेकर वहां की आबादी में मुसलमानों को बसा दिया है। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ रज़ि० आमिल—ए—समरक़न्द को ख़त लिखा कि वे क़ैतेबा और समरक़न्द के मुक़द्दमे के लिए वहां एक स्पेशल अदालत तय की, यदि जज यह निर्णय ले कि मुसलमानों को वहां से निकल जाना चाहिए, तो वे तुरन्त ख़ाली कर दें। आमिल ने जमीअ बिन हाज़िरुल बाबी को तय किया ताकि वे पड़ताल करें, पड़ताल के बाद उन्होंने जो स्वयं एक मुसलमान थे, मुसलमानों को वहां से निकल जाने का आदेश दिया, और यह लिखा कि इस्लामी सेना के सेनापति को चाहिए था कि पहले उनको जंग का अल्टीमेटम देते और इस्लाम के जंग के क़ानून के अनुसार सभी संधिया रद्द करते ताकि समरक़न्द वाले मुसलमानों से जंग करने की तैयारी कर सकते। उन पर अचानक हमला ठीक नहीं था। जब समरक़न्द वालों को यह परिस्थिति देखकर यक़ीन हो गया कि मानव इतिहास के अन्दर उसकी मिसाल नहीं मिलती किसी शासन ने किसी सेना के कमान्डर इन चीफ़ को और सेना को ऐसे नियमों के अन्दर कस रखा हो, तो उन्होंने निर्णय किया कि ऐसी क़ौम से जंग बेकार है। बल्कि ऐसी क़ौम का शासन अल्लाह की नेमत है और रहमत है, अत: वे इस्लामी सेना के रहने पर सहमत हो गए और निर्णय लिया कि मुसलमानों के साथ रहें।

ग़ौर कीजिए! एक सेना एक शहर जीतकर उसमें दाख़िल हो जाती है। लोग विजयी सेना की सरकार से शिकायत करते हैं। शासन द्वारा बनाया गया जज स्वयं अपनी विजयी सेना के विरुद्ध निर्णय देते हैं और सेना को शहर छोड़ने का आदेश देते हैं और तय करती है कि लोगों की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ वे वहां नहीं रह सकते। क्या मानवता के नये और पुराने इतिहास में कोई व्यक्ति किसी एक जंग की निशानदेही कर सकता है जिसके सिपाही अपने आप को ऐसे नियमों में बांधे रखते हों। और सच्चाई के साथ ऐसे श्रेष्ठ नियमों की पैरवी करते हों जैसा कि हमारी सभ्यता के पूर्वजों ने करके दिखाया है। जहां तक मेरी जानकारी का संबंध है तो दुनिया की क़ौमों में किसी क़ौम के अन्दर भी ऐसा आचरण नहीं मिलता।

डॉक्टर मुस्तफ़ा सिबाई रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP - 10

ISSUE:04 APRIL 2016 VOLUME: 08

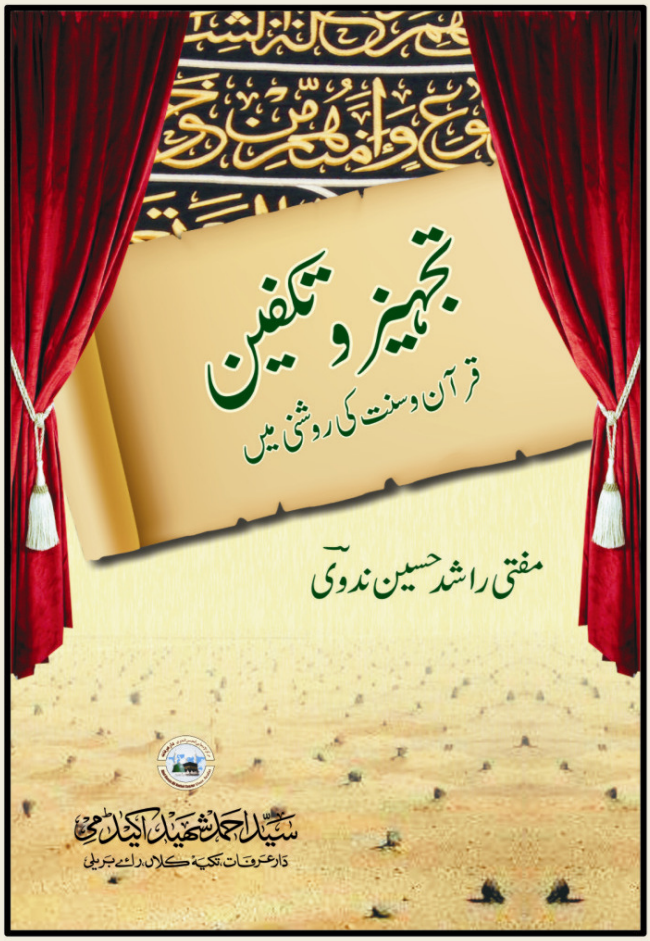

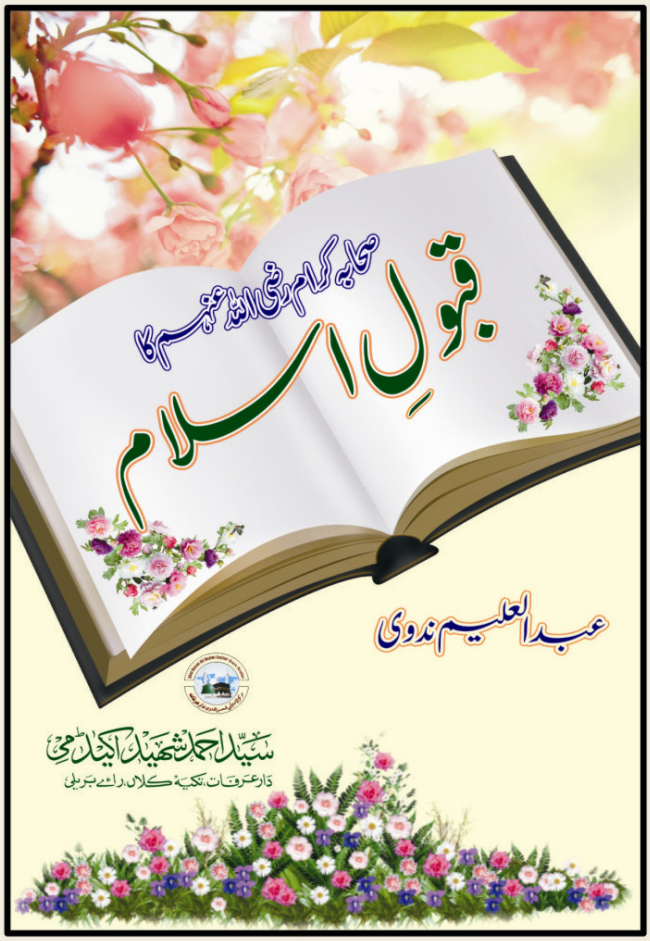

DECLARATION OF OWNERSHIP AND OTHER DETAILS (FORM 4 RULE 8)

Name of Paper:	Payam-e-Arafat	Address:	Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli (U.P.) 229001
Place of Publication:	Raebareli	Printer/Publisher:	Mohammad Hasan Nadwi
Periodicity of Publication:	Monthly	Nationality:	Indian
Chief Editor:	Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi	Address:	Maidanpur, Post. Takiya Kalan, Raebareli (U.P.) India
Nationality:	Indian	Ownership:	Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi

I, Mohammad Hasan Nadwi, printer/publisher declare that the above information is correct to the best of my knowledge and belief.
(March 2014)

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9792646858
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.